कल्पद्रुम विधान

कल्पद्रुम विधान

रचयिता :
कविवर राजमल पवैया

सम्पादक :
पण्डित अभयकुमार जैन
शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, एम.कॉम.

प्रकाशक :
अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन
ए-4, बापूनगर, जयपुर – 302015
फोन : (0141) 2705581, 2707458

कल्पद्रुम विधान	:	पं. राजमल पवैया
प्रथम सात संस्करण (21 अक्टूबर, 1996 से अद्यतन)	:	14 हजार 200
अष्टम् संस्करण (18 सितम्बर, 2015) पर्यूषण महापर्व	:	1 हजार
योग	:	**15 हजार 200**

मूल्य : पच्चीस रुपया

टाईपसैटिंग :
प्रिन्टोमैटिक्स
दुर्गापुरा, जयपुर
फोन : 2722274

मुद्रक :
सन् एन सन् प्रेस
तिलकनगर,
जयपुर (राज.)

प्रकाशकीय

पूजन-विधान की श्रृंखला में कविवर राजमलजी पवैया द्वारा रचित 'कल्पद्रुम विधान' का प्रकाशन करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

अबतक कविवर राजमलजी पवैया द्वारा रचित इन्द्रध्वज मण्डल विधान, एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान, बीस तीर्थंकर विधान, शान्ति विधान, पंच परमेष्ठी विधान, तीन लोक मण्डल विधान, रत्नत्रय मण्डल विधान, चौबीस तीर्थंकर विधान एवं चौंसठ ऋद्धि विधान, का प्रकाशन हम अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के माध्यम से कर ही चुके हैं। इन सभी विधानों का समाज द्वारा समुचित समादर किया गया है।

कल्पद्रुम विधान का तात्पर्य है समवशरण में विराजमान साक्षात् तीर्थंकर भगवान की पूजन। यदि इसे 'समवशरण विधान' नाम दें तो भी उपयुक्त ही होगा। जैनधर्म में प्रत्येक काल में चौबीस तीर्थंकर होते हैं और सभी तीर्थंकर समवशरण से विभूषित होते हैं। इस विधान में तीर्थंकरों के अन्तरंग और बहिरंग वैभव के साथ समवशरण का मनोहारी वर्णन संयोजित है। जहाँ इसमें अष्ट भूमि पूजन, चैत्यवृक्ष, कल्पवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष मानस्तम्भ तथा जिनस्तूप पूजन का समावेश है वहीं इसमें जिन सहस्रनाम पूजन, दिव्यध्वनि पूजन, गणधर पूजन, सर्व ऋषीश्वर पूजन तथा अनुबद्धकेवलि पूजन का सुन्दर चित्रण है। अन्त में पंचकल्याणक पूजन एवं सिद्धपूजन हैं। इसप्रकार अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्द की प्राप्ति में सहायक यह कल्पद्रुम विधान अपना नाम सार्थक कर रहा है।

वैसे तो पवैयाजी ने बृहद् इन्द्रध्वज मण्डल विधान की भांति पूर्व में लगभग 350 पृष्ठों के श्री कल्पद्रुम मण्डल विधान की रचना कर उसे अन्यत्र प्रकाशित किया था, परन्तु अब बड़े-बड़े विधानों की अपेक्षा 200–250 पृष्ठों के विधान अधिक लोकप्रिय हो रहे हैं इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए हमारे विशेष अनुरोध पर पवैयाजी ने पुनः श्रम करके इस 'कल्पद्रुम विधान' की रचना की है अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

पूजन-विधानों के सम्पादन में पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री तन्मयतापूर्वक विशेष श्रम करते हैं, इस विधान में भी उनका सम्पादन श्रम श्लाघनीय है। सदा की भांति प्रकाशन व्यवस्था विभाग के प्रभारी अखिल बंसल ने संभाली है। पुस्तक को अल्पमूल्य में उपलब्ध कराने का श्रेय दानदातारों को जाता है; उनकी सूची अन्यत्र प्रकाशित है। सभी सहयोगियों का हम हृदय से आभार मानते हैं। आप सभी इस विधान के माध्यम से अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति कर शीघ्र अनन्त सुख की प्राप्ति करें इसी भावना के साथ –

– परमात्म प्रकाश भारिल्ल
महामंत्री
अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

सम्पादकीय

शुद्धोपयोग की पुष्टि एवं अशुभोपयोग से बचने हेतु की जाने वाली पूजनों के पाँच भेदों का उल्लेख जिनागम में किया गया है। १. नित्य पूजन २. सर्वतोभद्र पूजन ३. कल्पद्रुम पूजन ४. अष्टान्हिका पूजन ५. इन्द्रध्वज पूजन। चक्रवर्ती द्वारा की जाने वाली समवशरण में साक्षात् विराजमान तीर्थंकर भगवान की पूजन कल्पद्रुम पूजन कहलाती है।

प्रस्तुत कल्पद्रुम विधान उक्त कल्पद्रुम पूजन का ही प्रायोगिक रूप है। चक्रवर्ती द्वारा की गई पूजन तो उनके विशिष्ट क्षयोपशम और साधनों के अनुरूप कितनी गहन, विशाल और भव्य होगी— इसकी कल्पना करना भी सहज संभव नहीं है, परन्तु हम अपनी बुद्धि के अनुसार अपने साधनों के अनुरूप साक्षात् समवशरण में अपनी उपस्थिति की कल्पना करके कल्पद्रुम पूजन के भावों का रसास्वादन तो कर ही सकते हैं। प्रस्तुत कृति इसी मंगलमय संकल्प का ही प्रयास है।

पूजन-विधान साहित्य में विपुल बृद्धि करने वाले श्री पवैयाजी की लेखनी इस विषय में चले बिना कैसे रह सकती थी? अत: उन्होंने बृहदाकार विधान की रचना करके तारादेवी ग्रंथमाला से इसे प्रकाशित भी करा दिया। अधिक विस्तृत रूप होने से वह विधान कराने में १० दिन का समय चाहिए था। अत: उनसे मध्यम आकार के विधान की पुन: रचना करने का अनुरोध किया गया जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस विधान की रचना के पूर्व इसकी पूरी योजना बनाई गई जिसमें सुनिश्चित किया गया कि कौन-कौन सी पूजन होंगी? कहाँ किन-किन छन्दों का प्रयोग होगा तथा कहाँ किन आध्यात्मिक / सैद्धान्तिक भावों का रंग भरा जाएगा। इसी योजना के आधार पर प्रस्तुत कृति तैयार की गई। अन्य विधानों के समान प्रस्तुत कृति को संवारने का अवसर मुझे दिया गया एतदर्थ मैं स्वयं को विशिष्ट पुण्यशाली अनुभव करता हूँ।

श्री पवैयाजी ने अपनी अनेक कृतियों को भाषा, भाव, छन्द आदि अनेक दृष्टियों से संवारने का अवसर मुझे दिया है। उनकी कृतियों को गाकर जिनेन्द्र भक्ति रस का पान करने के अवसर भी मुझे बहुत मिलते हैं; अतः विधान कराते समय होने वाली सूक्ष्म भावानुभूतियों के आधार पर मैं उनकी कृतियों को सजाने-संवारने का प्रयास करता हूँ। इस कार्य में मेरा एकमात्र यही दृष्टिकोण रहा है कि यथासम्भव श्रेष्ठतम रचनाओं के माध्यम से पूजन-विधान के आनन्द रस पान करने का अवसर मिल सके। इस प्रयास में मुझे कितनी सफलता मिलती है इसका अनुभव उक्त विधानों को पढ़ते समय मैं स्वयं करता हूँ तथा अध्यात्मप्रेमी पाठकगण भी करेंगे।

अपने द्वारा कृति में अपनी रुचि के अनुरूप ढालने का अवसर पवैयाजी द्वारा मुझे दिया जाता है यह उनकी महानता और हृदय की विशालता है; एतदर्थ में उनका चिर कृतज्ञ हूँ।

प्रस्तुत कृति में इस बात का विशेष प्रयास किया गया है कि पाठकों को साक्षात् समवशरण में बैठकर तीर्थंकर परमात्मा की पूजन करने के आनन्द की अनुभूति हो। एतदर्थ समवशरण की प्रत्येक भूमि में खड़े होकर भगवान की पूजन करने का भाव व्यक्त किया गया है समवशरण में विराजमान ऋषियों, गणधरों और केवलियों तथा दिव्यध्वनि आदि से समवशरण के समग्र वातावरण का सृजन किया गया है।

यह भी सहज संयोग है कि इन्द्रध्वज विधान के समान कल्पद्रुम विधान की भी दो-दो कृतियाँ एक ही लेखक द्वारा रची गई। इन प्रसंगों से समाज को अध्यात्म रस पोषक सामग्री तो उपलब्ध हो ही जाती है। सभी लोग इन विधानों के माध्यम से जिनेन्द्र भक्ति के साथ-साथ चैतन्य रस का भी पान करें— यही हार्दिक भावना है।

अभयकुमार जैन, शास्त्री

जैनदर्शनाचार्य, एम. कॉम

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण,
पर की मुझ में कुछ गन्ध नहीं ।
मैं अरस, अरूपी, अस्पर्शी,
पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं ।।
मैं रंग-राग से भिन्न, भेद से
भी मैं भिन्न निराला हूँ ।
मैं हूँ अखण्ड, चैतन्यपिण्ड,
निज रस में रमने वाला हूँ ।।
मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता,
मुझ में पर का कुछ काम नहीं ।
मैं मुझ में रहने वाला हूँ,
पर में मेरा विश्राम नहीं ।।
मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध, एक,
पर-परिणति से अप्रभावी हूँ ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व,
मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ ।।

—डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

कहाँ – क्या

	मंगलाचरण	५
१.	कल्पद्रुम समवशरण समुच्चय पूजन	८
२.	श्री तीर्थंकर अर्हन्त पूजन	१४
३.	समवशरण स्थित मानस्तम्भ पूजन	२२
४.	चैत्य प्रासाद भूमि पूजन	२९
५.	खातिका भूमि पूजन	३५
६.	लता भूमि पूजन	४१
७.	उपवन भूमि पूजन	४७
८.	चैत्यवृक्ष पूजन	५४
९.	ध्वज भूमि पूजन	६०
१०.	कल्पवृक्ष भूमि पूजन	६७
११.	सिद्धार्थ वृक्ष पूजन	७४
१२.	भवन भूमि पूजन	८०
१३.	भवन-भूमि सुस्थित जिन स्तूप पूजन	८६
१४.	महोदय मंडप विराजित श्री केवली पूजन	९७
१५.	श्री मंडप भूमि पूजन	१०७
१६.	वर्तमान जिन चौबीसी पूजन	११५
१७.	श्री जिन सहस्रनाम पूजन	१२५
१८.	दिव्यध्वनि पूजन	१३४
१९.	गणधर पूजन	१४२
२०.	सर्व ऋषीश्वर पूजन	१५०
२१.	तीर्थकर महिमा पूजन	१६२
२२.	तीर्थ प्रवर्तनकाल पूजन	१७०
२३.	श्री अनुबद्धकेवली पूजन	१७९
२४.	जिनगुण सम्पत्ति पूजन	१८५
२५.	जिनेन्द्र पंचकल्याणक पूजन	१९३
२६.	श्री सिद्ध पूजन	१९९
	समुच्चय महार्घ्य	२०५
	शान्ति पाठ	२०९
	कल्पद्रुम स्तवन	२१०

विधान के बीच में दिए गए भक्ति-गीतों की सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	निरखी-निरखी मनहर मूरति	२१
२.	निरखों अंग-अंग जिनवर के	२८
३.	अशरीरी सिद्ध भगवान	३४
४.	ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाला रे	४६
५.	तिहारे ध्यान की मूरत	५३
६.	आयो आयो रे हमारो बड़ो भाग	५९
७.	रोम रोम पुलकित हो जाय	६६
८.	तुम्हारे दर्श बिन स्वामी	७३
९.	करलो जिनवर का गुणगान	९६
१०.	आयो रे आयो रे ज्ञानानन्द की डगरिया	१३३
११.	देख तेरी पर्याय की हालत	१४१
१२.	भविक तुम वन्दहु मनधर भाव	१४९
१३.	हे प्रभो ! चरणों में तेरे आ गये	१७८
१४.	तू जाग रे चेतन प्राणी	१८४
१५.	निरखत जिनचन्द्र-वदन	१९२
१६.	कल्पद्रुम स्तवन	२१०

***

श्री कल्पद्रुम विधान

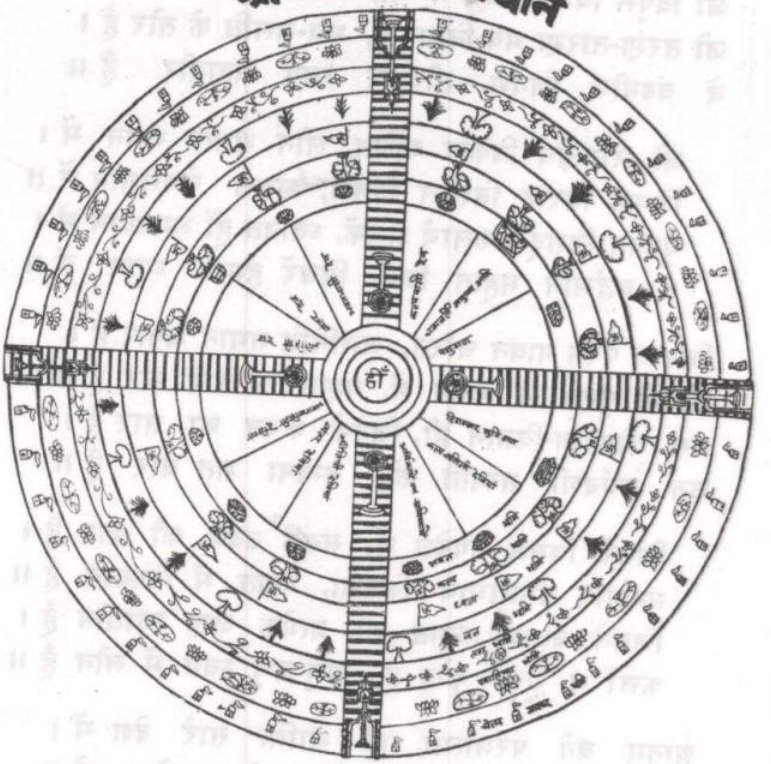

卐 महावीर वन्दना 卐

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं॥
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं।
वे वंदनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं॥

जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट् विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में॥
युगपत् विशद् सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में॥

जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावें पार है॥
बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वन्दना शत बार है॥

जिनके विमल उपदेश में, सबके उदय की बात है।
समभाव समताभाव जिनका, जगत में विख्यात है॥
जिसने बताया जगत को, प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्त्ता न धर्त्ता कोइ है, अणु-अणु स्वयं में लीन है॥

आतम बने परमात्मा, हो शान्ति सारे देश में।
है देशना-सर्वोदयी, महावीर के सन्देश में॥

–डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

ॐ

श्री कल्पद्रुम विधान

मंगलाचरण

अनुष्टुप

मंगलं पंच परमेष्ठी, मंगलं तीर्थंकरम्।
मंगलं कल्पद्रुम पूजन, जिनविधान सुमंगलम्॥
मंगलं दिव्यध्वनि पावन, महा जिनध्वज मंगलम्।
मंगलं शुद्ध चैतन्य, आत्म धर्मोस्तु मंगलम्॥

दोहा

समवशरण शोभित हुआ, जिनवर द्युति से आज।
वंदन करते इन्द्र सब, उपकृत सकल समाज॥
गंधकुटी में शोभते, अंतरीक्ष भगवान।
वन्दूँ सर्व जिनेन्द्र प्रभु, तीर्थंकर गुणखान॥
आलंबन बिन आत्मा, बिन आलंबी देह।
परमौदारिक देह में, सर्व जिनेन्द्र विदेह॥
समवशरण के मध्य में, शोभित हैं भगवान।
अतिविशुद्ध परिणाम से, मैं पूजूँ गुणखान॥
चाहदाह का नाश हो, चाहूँ यह जिनराज।
शुद्धातम रस पान कर, तृप्त बनूँ मैं आज॥

सोरठा

अहो महा उपकार, तीर्थंकर भगवान का।
इसीलिए हे नाथ, करूँ विधान सुकल्पद्रुम॥

पीठिका

वीरछंद

मंगलमयी अमंगलहारी, है कल्पद्रुम महाविधान।
समवशरण को शोभित करते, तीर्थंकर अनुपम छविमान॥
समवसरण में वसु प्राचीरों, सहित भूमि हैं अष्ट महान।
धूलिशालि से श्री मंडप तक, अनुपम शोभामई प्रधान॥
पंच सहस्र योजन ऊँचा है, बीस सहस्र दिव्य सोपान।
बिना कष्ट के सभी जीव, चढ़ जाते हैं गाते प्रभुगान॥
धूलिशालि प्राचीर अग्र, दिशि चारों मानस्तम्भ महान।
मानस्तम्भों में चारों दिशि, जिनप्रतिमाएँ हैं छविमान॥
प्रथम चैत्य प्रासाद भूमि है, त्रिभुवन में सब से उत्तम।
फिर खातिका भूमि अति पावन, भ्रम क्षय करने में सक्षम॥
शांति प्रदायक लता भूमि फिर, विविध लताओं से शोभित।
फिर है उपवन भूमि मनोहर, सारी जगती लख मोहित॥
इसी भूमि में चैत्य वृक्ष हैं, पृथ्वीकायिक चार विशाल।
पूरब दक्षिण पश्चिम उत्तर जिनप्रतिमा लख जीव निहाल॥
पंचम ध्वजा भूमि अति सुंदर, ध्वजा पंक्तियों से मंडित।
फिर है कल्पवृक्ष भूमि जो, कल्प सुतरुओं से शोभित॥
इसी भूमि में है सिद्धार्थ सुवृक्ष महामंगल दाता।
जो भी इनके सिद्ध बिम्ब, दर्शन करता वह सुख पाता॥
सप्तम भवन भूमि अति पावन, जहाँ सजे देवोपम साज।
चारों दिशि नव-नव स्तूपों, में जिन प्रतिमा रहीं विराज॥
इसी भूमि में भव्य महोदय मंडप है उत्तम पावन।
सभी केवली यहीं विराजें, भव्यजनों को मनभावन॥
अष्टम भूमि श्रीमंडप है, तीन पीठ से युक्त महान।
अंतरीक्ष तीर्थंकर राजे, जय-जय-जय-जय जिन भगवान॥

वलयाकार दिशा आठों में द्वादश सभा बनी सुंदर।
भव्य जीव जिनध्वनि सुनते हैं, पाते सम्यग्ज्ञान प्रवर॥
अनंत चतुष्टय से मंडित हो छ्यालीस गुण के धारी।
वीतराग सर्वज्ञ श्री अरहंत जिनेश्वर उपकारी॥
समवशरण ही कल्पद्रुम है, तीनों लोकों में विख्यात।
इन्द्र आज्ञा से कुबेर, रचना करता इसकी प्रख्यात॥
तीर्थंकर प्रभु तप धारण कर, पाते हैं जब केवलज्ञान।
तब इसकी रचना होती है, श्रेष्ठ जगत में महा महान॥
दिवस रात्रि का भेद नहीं है, चिर प्रकाश रहता वसुयाम।
तीन लोक की सकल संपदा, आकर लेती यहाँ विराम॥
भूख प्यास का नाम नहीं है, बैर विरोध नहीं किंचित्।
तीर्थंकर की द्युति को लखकर, चन्द्र सूर्य होते लज्जित॥
ध्वजा पंक्तियाँ प्रातिहार्य, वसुमंगल अष्ट द्रव्य शोभित।
साढ़े बारह कोटि वाद्य बजते हैं सुनकर जग मोहित॥
साक्षात् कल्पद्रुम जिनवर नमन करूँ मैं बारम्बार।
कल्पद्रुम विधान करता हूँ, गाऊँ प्रभु की जय-जयकार॥
छह खंडों के अधिपति चक्री करते हैं यह श्रेष्ठ विधान।
दान किमिच्छिक छह खंडों में, दे गाते प्रभु का यशगान॥
रचना समवशरण की कृत्रिम करते है निज नगरी मध्य।
मुकुटबद्ध राजाओं के संग, पूजन करते प्रभु की भव्य॥
नभ से पुष्पवृष्टि होती है, गंधोदक वर्षा सुखकार।
तीनों लोकों में होती है, तीर्थंकर प्रभु की जयकार॥
समवशरण में आत्म शरण पा, मैं भी करूँ आत्मकल्याण।
जिनवाणी को हृदयंगम कर, आप कृपा पाऊँ निर्वाण॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

***

1

कल्पद्रुम समवशरण समुच्चय पूजन

स्थापना

दोहा

तीर्थंकर जिनराज का समवशरण प्रख्यात।
सूर्य चंद्र के तेज से होती यहाँ न रात॥

देते आप सदैव ही नाथ सुसम्यग्ज्ञान।
कल्पद्रुम प्रभु आप हैं, करते मोक्ष प्रदान॥

षट् ऋतुयें सब संग मिल, करतीं तुम्हें प्रणाम।
द्वादश मास प्रणाम कर लेते यहाँ विराम॥

सप्त वार आनन्द से गाते जय वसुयाम।
दोनों अयन प्रसन्न हो करते हैं विश्राम॥

शत इन्दों में इन्द्र हैं, भवनालय चालीस।
दो हैं ज्योतिर्लोक के, व्यंतर हैं बत्तीस॥

स्वर्गालय चौबीस हैं, अष्टापद पशु इन्द्र।
अधिपति है षट्खण्ड का, चक्रवर्ती नर इन्द्र॥

सभी झुकाते शीश निज, जिनचरणों में दिव्य।
जय-जय शब्द उचारते, असंख्यात नर भव्य॥

असंख्यात तिर्यंच हैं, असंख्यात हैं देव।
पुष्पांजलि नभ से करें, जय-जय-जय जिनदेव॥

समवशरण जिनराज का तीनलोक में श्रेष्ठ।
चौदह राजु त्रिलोक में, तुम प्रभु सबसे ज्येष्ठ॥

हो चिंतामणि कल्पद्रुम, कामधेनु प्रभु आप।
चित्राबेल महान हो, हरते भव ज्वर ताप॥

समवशरण पूजन करूँ, विनयित होकर नाथ।
आप कृपा को प्राप्त कर, मैं भी बनूँ सनाथ॥
मन वच काया पूर्वक पूजूँ हे तीर्थेश।
तुव पथ पर चल कर बनूँ मैं भी निर्ग्रंथेश॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणविराजिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री समवशरणविराजिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री समवशरणविराजिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इतिसन्निधिकरणम्।

चौपाई

जिनदर्शन का नीर सुखमयी क्षय करता संसार दुखमयी।
जिनदर्शन युत नाथ हृदय हो सप्त भयों से रहित निलय हो॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थिततीर्थंकरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनदर्शन चंदन अति शीतल शांत भावना निर्मित उज्ज्वल।
प्रभु संसार ताप का क्षय हो भ्रमण चतुर्गति शीघ्र विलय हो॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थिततीर्थंकरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनदर्शन अक्षत अति पावन, मुक्ति मार्ग पाऊँ मन भावन।
भवसमुद्र को पार करूँ मैं, दुखदायक संसार हरूँ मं॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जिनदर्शन दुष्काम विनाशक है निष्काम स्वरूप प्रकाशक।
निज भावों की पुष्प गंध हो फिर न कभी भी, नया बंध हो॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थिततीर्थंकरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनदर्शन चरु तृप्ति प्रदायक क्षुधा वेदना हर सुखदायक।
जिनदर्शन से हो अनगारी बनूँ निराहारी अविकारी॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थिततीर्थंकरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनदर्शन के दीप प्रजालूँ अपना शुद्ध स्वभाव सजा लूँ।
हो अज्ञानतिमिर क्षय स्वामी पाऊँ ज्ञान ज्योति अभिरामी॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थिततीर्थंकरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन दर्शन की धूप सुगंधित पाऊँ धर्ममयी आनंदित।
अष्टकर्म सम्पूर्ण जलाऊँ फिर न लौट इस भव में आऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनदर्शन से निज दर्शन हो फिर न रंच भी भव बंधन हो।
महिमामयी मिला जिन दर्शन महा मोक्ष फल पाऊँ भगवन॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थिततीर्थंकरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनदर्शन कर अर्घ्य चढ़ाऊँ निजदर्शन कर चरण बढ़ाऊँ।
मुनि निर्ग्रन्थ नाथ बन जाऊँ श्रेणी क्षायिक पर चढ़ जाऊँ॥
अजर अमर अविकल अविनाशी स्वयं सिद्ध निजज्योति प्रकाशी।
पद अनर्घ्य अविनश्वर पाऊँ परम शांत हो शिवसुख लाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

वीरछन्द

पूर्व दिशा के गोपुर से श्री तीर्थंकर को करूँ प्रणाम।
अतंरीक्ष अरहंत विराजे निज स्वरूप में पूर्ण विराम॥

सातत्त्व उपदेश दे रहे, अमृतमयी ब्रह्म पदरूप।
निर्मल ज्ञान-चक्षु के स्वामी, अर्घ्य चढाऊँ भावस्वरूप ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य पूर्वदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेद्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दक्षिण दिशि के सिंहद्वार से, श्री जिनवर प्रभु को वन्दूँ।
छ्यालीस गुणधारी केवलज्ञानी के पद अभिनन्दूँ॥
स्व-पर प्रकाशक ज्ञान प्रदाता, ज्ञानलक्ष्मी के स्वामी।
अर्घ्य चढ़ाऊँ विनय भाव से, दोष रहित अंतर्यामी ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य दक्षिणदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेद्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तोरण द्वार दिशा पश्चिम से, वन्दूँ श्री अरहंत महान।
द्वादश सभा दिव्यध्वनि सुनकर, करती है अपना कल्याण॥
जन्म जरा मरणादि विनाशूँ राग आग से बचूँ सदा।
अर्घ्य चढ़ाऊँ प्रभु-चरणों में ज्ञान-भाव ही रचूँ सदा ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य पश्चिमदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेद्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर दिशि गोपुर सुद्वार से, समवशरण अधिपति का रूप।
लखूँ विनय से धन्य-धन्य हैं जिनपति परमशुद्ध चिद्रूप॥
जड़चेतन का ज्ञान कराते, देते भेद-ज्ञान विज्ञान।
अर्घ्य चढाऊँ स्व-पर विवेक जगाऊँ उर में हे भगवान ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य उत्तरदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेद्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

भोग लोलुपी जीवन जीकर पाये भव के कष्ट अपार।
भव-तन भोग उदास बनूँ अब स्वयं करूँ निज का उद्धार॥

सदा दुःखमयी विषय-लीनता, आत्मलीन हो दूर करूँ।
महाअर्घ्य अर्पित कर स्वामी, आप सौख्य भरपूर भरूँ॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण की महिमा तीन लोक विख्यात।
चार समय दिव्यध्वनि खिरती कोई भेद नहीं दिन रात॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकरजिनेद्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

समशरण अरहन्त का सविनय करूँ प्रणाम।
निज स्वभाव की शक्ति से पाऊँ निज ध्रुव धाम॥

वीरछन्द

अखिल विश्व में सर्वोत्तम जिन समवशरण बहु महिमावान।
इन्द्र आज्ञा से कुबेर रचना करता पल भर में आन॥

है ब्रह्माण्ड चतुर्दश में इससे उत्तम रचना न कहीं।
सोलह स्वर्गों के सारे इन्द्रों का है आगमन यहीं॥

पांच वेदियाँ वसुप्राचीरें अष्टभूमि सुन्दर छविमान।
तीन पीठ युत गंधकुटी है अन्तरीक्ष राजे भगवान॥

अष्ट प्रातिहार्यों से शोभित त्रिभुवनपति तीर्थंकर राज।
दिव्यध्वनि उपदेश प्रदाता निजानन्द रस ही साम्राज्य॥

जब विहार होता है चलता धर्म चक्र आगे आगे।
त्रयशत त्रेसठ मत पाखण्डी, देख सभी का भ्रम भागे॥

तीर्थंकर की यशोध्वजा को वन्दन करता है संसार।
त्रिभुवन स्वामी के मस्तक पर हैं त्रयछत्र श्वेत मनहार॥

सर्वोत्तम अतिशय होते हैं पुष्प वृष्टि होती अनुपम।
गन्धोदक वर्षा होती है मलय समीर पूर्ण सक्षम॥

पांच सहस्त्र धनुष उन्नत है भूतल से जिन समवशरण।
तीन लोक के प्राणी पाते परमोत्तम जिनराज शरण॥
श्रीमंडप के मध्य खंड में बारह कोठे नियत प्रधान।
गन्ध कुटी की चारों दिशि में द्वादश सभा दिव्य छविमान॥
पहले कोठे में विराजते गणधर ऋषि मुनि साधु महान।
दूजे में देवियाँ कल्पवासिनी गा रही जिन जय गान॥
तीजे में आर्यिका श्राविका सुनती दिव्यध्वनि सन्देश।
चौथे में ज्योतिषी देवियाँ सुनती विनयित जिन उपदेश॥
पंचम में देवियाँ व्यन्तरों की सुनती हैं जिनवाणी।
षष्टम में देवियां भवनवासी सुनती ध्वनि कल्याणी॥
सप्तम कोठे में हैं देव भवनवासी जिन प्रभु के भक्त।
अष्टम कोठे में हैं व्यन्तर देव भक्ति में अति अनुरक्त॥
नवमें कोठे में हैं देव ज्योतिषी सब प्रभु महिमा लीन।
दसवें में हैं देव कल्पवासी प्रभु चरणों में तल्लीन॥
ग्यारह में हैं पशुगण बैठे बैर भाव का लेश न काम।
बारहवें में मानवगण हैं प्रतिपल लेते प्रभु का नाम॥
ऐसे समवशरण की महिमा मेरे उर में छाई है।
कल्पद्रुम पूजन करते ही काललब्धि अब आई है॥

ॐ ह्रीं श्री कल्पद्रुमजिनसमवशरणस्थिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

समवशरण पूजा है मैने भाव से।
आत्मशरण पाऊँ प्रभु ज्ञानस्वभाव से॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पाजलिं क्षिपेत्

***

2

श्री तीर्थंकर अर्हन्त पूजन

स्थापना

गीतिका

अर्हंत तीर्थंकर जिनेश्वर देव को वन्दन करूँ।
वीतराग महान जिन सर्वज्ञ पद अर्चन करूँ॥
चार गुण हैं आतमाश्रित बयालीस पराश्रित।
अंतरीक्ष महान राजे समवसृत में स्वाश्रित॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकर- अर्हन्तजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकर- अर्हन्तजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकर- अर्हन्तजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव. भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

चान्द्रायण

जगा वज्र पौरुष अर्हन्त हुये महान।
त्रिविध रोग नाशक त्रिभुवन में गुण प्रधान॥
श्री अर्हन्त तीर्थंकर वन्दन करूँ।
सकल कर्ममल नाश, नाथ बंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकर- अर्हन्तजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु. विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवाताप नाशक जिनवर भगवंत हो।
गुण अनंतपति परम-पूज्य अर्हन्त हो॥
श्री अर्हन्त तीर्थंकर वन्दन करूँ।
सकल कर्ममल नाश, नाथ बंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकर- अर्हन्तजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

शाश्वत सुख भण्डार परम शिवरूप हो।
ध्रौव्य त्रिकाली अक्षय शुद्ध अनूप हो॥
श्री अर्हन्त तीर्थंकर वन्दन करूँ।
सकल कर्ममल नाश, नाथ बंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकर- अर्हन्तजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कामशत्रु को पल भर में ही जय किया।
निज निष्काम स्वपद स्वाश्रित होकर लिया॥
श्री अर्हन्त तीर्थंकर वन्दन करूँ।
सकल कर्ममल नाश, नाथ बंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकर- अर्हन्तजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुभवरस पी आप हुए त्रिभुवन धनी।
नहीं राग की शेष एक भी है कनी॥
श्री अर्हन्त तीर्थंकर वन्दन करूँ।
सकल कर्ममल नाश, नाथ बंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकर- अर्हन्तजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परम ज्ञान कैवल्य ज्योति के धाम हो।
स्व-पर प्रकाशक अतुलनीय अभिराम हो॥
श्री अर्हन्त तीर्थंकर वन्दन करूँ।
सकल कर्ममल नाश, नाथ बंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकर- अर्हन्तजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुक्ल ध्यान की अग्नि जलाई तुरत ही।
अष्ट कर्म जल नष्ट हो गये स्वतः ही॥
श्री अर्हन्त तीर्थंकर वन्दन करूँ।
सकल कर्ममल नाश, नाथ बंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकर- अर्हन्तजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अंतिम शुक्ल ध्यान जब ध्याया आपने।
महामोक्षफल तत्क्षण पाया आपने॥
श्री अर्हन्त तीर्थंकर वन्दन करूँ।
सकल कर्ममल नाश, नाथ बंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकर- अर्हन्तजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

काललब्धि प्रभु मेरी भी अब आ गयी।
पद अनर्घ्य की महिमा हृदय समा गयी॥
श्री अर्हन्त तीर्थंकर वन्दन करूँ।
सकल कर्ममल नाश, नाथ बंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकर- अर्हन्तजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

अठारह दोषों के अभाव सम्बन्धी अर्घ्य

दोहा

छ्यालीस गुण सहित हैं तीर्थंकर भगवान।
दोष अठारह रहित ये, प्रभु अरहंत महान॥
जिन गुण सम्पत्ति युक्त हैं, तीर्थंकर जिनराज।
भावसहित वन्दन करूँ पाऊँ जिन गुण आज॥

सोलह कारण भावना, फल तीर्थंकर नाथ।
त्रिलोकाग्र में मिल गया, मोक्ष लक्ष्मी साथ॥

सोरठा

श्री अरहंत महान दोष अठारह रहित हैं।
करते हैं कल्याण गुण अनन्त से सहित हैं॥

चामर

जन्म-जरा-मरण नहीं, अरति रति दोष नहीं।
निद्रामय दोष नहीं, चिन्ता विस्मय नहीं॥
रोग नहीं शोक नहीं, क्षुधा तृषा दोष नहीं।
खेद नहीं स्वेद नहीं, द्वेष नहीं मोह नहीं॥
मान नहीं शुद्ध आत्मा में रञ्च दोष नहीं।
अष्टादश दोष अल्प कोई भी रहे नहीं॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान अष्टादशदोषरहिताय तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छ्यालीस गुण सम्बन्धी अर्घ्य

वीरछन्द

अनन्त चतुष्टय विकसित होते घातिकर्म जब होते नाश।
दर्शन, ज्ञान, अनंत, वीर्य सुख करते निर्मल पूर्ण प्रकाश॥
जन्म समय के दश अतिशय से शोभित हैं तीर्थंकर देव।
केवलज्ञान समय दश अतिशय होते हैं अनुपम स्वयमेव॥
चौदह अतिशय से शोभित प्रभु जो करते स्वर्गों के देव।
आठ प्रातिहार्य होते हैं धन्य-धन्य तीर्थंकर देव॥
ये गुण छयालीस अरहंतों को होते हैं महा महान।
चार आत्माश्रित गुण होते शेष पराश्रित लखो सुजान॥

अर्घ्य चढ़ाऊँ विनय सहित मैं तीर्थंकर भगवन्तों को।
हृदय भक्ति से अतिप्लावित है नमन करूँ अरहंतों को ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान अष्टादशदोषरहिताय तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ढाई द्वीप संबंधी भूतकालवर्ती तीर्थंकरों को अर्घ्य

वीरछन्द

जम्बूद्वीप अरु खण्ड घातकी पुष्करार्ध ये ढाई द्वीप।
ये ही मनुज क्षेत्र कहलाते कर्मभूमि युगधर्म प्रदीप ॥
ढाई द्वीप के भूतकाल संबंधी तीर्थंकर भगवान।
अर्घ्य चढ़ाऊँ शीश झुकाऊँ हुए अनंत जिनेश महान ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री ढाई द्वीपसंबंधिभूतकालवर्ती तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ढाई द्वीप संबन्धी वर्तमानकालवर्ती तीर्थंकरों को अर्घ्य

वीरछन्द

तीन लोक के ढाई द्वीप में ही होते जिनवर विख्यात।
हुए अनादि काल से अब तक तीर्थंकर अनंत प्रख्यात ॥
वर्तमान में भी होते हैं अरु होंगे भविष्य में भी।
उन सबको मैं अर्घ्य चढ़ाऊँ होऊँ प्रभु के सम मैं भी ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपस्थ समवशरणमध्यविराजमानविद्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ढाई द्वीप संबंधी भविष्यकालवर्ती तीर्थंकरों की अर्घ्य

वीरछन्द

ढाई द्वीप के काल भविष्यत् संबंधी तीर्थंकर नाथ।
अर्घ्य चढ़ाऊँ विनयभाव से हो जाऊँ मैं नाथ सनाथ ॥
आत्मज्ञान रथ पर चढ़कर इस भवसागर को पार करूँ।
सिद्धपुरी में सदा विराजूँ शाश्वत सौख्य अपार वरूँ ॥

सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चरितमय शुद्ध स्वरूपाचरण मिले।
मेरे अंतरंग उपवन में संयम पुष्प महान खिले ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीप सम्बन्धिभविष्यकालवर्तितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भरतक्षेत्र संबंधी भूतकालवर्ती तीर्थंकरों का अर्घ्य

वीरछन्द

भरत क्षेत्र के भूतकाल संबंधी तीर्थंकर चौबीस।
श्री निर्वाण आदि गुण धारी नाथ अनंतवीर्य जगदीश ॥
सादर सविनय अर्घ्य चढ़ाऊँ प्रभु अरहंत दशा पाऊँ।
स्वाध्याय की परम्परा का अनुगामी अब हो जाऊँ ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्री भरतक्षेत्रसम्बन्धिभूतकालवर्ति तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भरतक्षेत्र संबंधी वर्तमान कालवर्ती तीर्थंकरों का अर्घ्य

वीरछन्द

भरतक्षेत्र के वर्तमान चौबीसों श्री जिनराज महान।
वृषभ आदि श्री महावीर प्रभु का ही मैं गाऊँ गुण गान ॥
सादर सविनय अर्घ्य चढ़ाऊँ मंगल उत्तम शरण स्वरूप।
आत्मतत्त्व निज का निर्णय कर पाऊँ पद परमात्म अनूप ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्री भरतक्षेत्रसम्बन्धिवर्तमानकालवर्तिचतुर्विंशति तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भरतक्षेत्र संबंधी भविष्यकालवर्ती तीर्थंकरों का अर्घ्य

वीरछन्द

काल भविष्यत् भरतक्षेत्र के भावी तीर्थंकर भगवान।
महापद्म आदिक सु अनन्तवीर्य चौबीस जिनेश महान ॥
सादर सविनय अर्घ्य चढ़ाऊँ केवलज्ञान प्रकाश करूँ।
आत्मतत्त्व की दृढ़ प्रतीति कर घाति अघाति विनाश करूँ ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्री भरतक्षेत्रसम्बन्धिभविष्यकालवर्तितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचविदेह संबंधी विद्यमान बीस तीर्थंकरों को अर्घ्य

वीरछन्द

पंच विदेहक्षेत्र में होते विद्यमान तीर्थंकर बीस।
सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, सुजात स्वयंप्रभ ईश॥
वृषभानन, अनन्तवीर्य, सौरीप्रभ, विशालप्रभ जिननाथ।
श्री वज्रधर, चन्द्रानन, श्री वीर्य चन्द्रबाहु जिन ईश्वर नाथ॥
श्री नेमीप्रभ, वीरसेन, महाभद्र, देवयश परम महान।
अजितवीर्य जिन विचरण करते हैं विदेह में सदा प्रधान॥
शाश्वत साक्षात् तीर्थंकर को मैं अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।
रत्नत्रय की भक्ति प्राप्त कर हो जाऊँ मैं भी जिनराज॥ ९॥

ॐ ह्रीं श्री पंचविदेहसम्बन्धिसमवशरणमध्यविराजमान विद्यमानविंशति तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

एक मात्र तीर्थंकर होते समवशरण सम्राट महान।
छ्यालीस गुण मण्डित होते दोष अठारह रहित महान॥
महा अर्घ्य अर्पित करता हूँ मन-वच-काया पूर्वक आज।
रागादिक परिणाम बन्धमय नाश करूँ मैं भी जिनराज॥ १०॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य विराजमान तीर्थंकर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

मौक्तिकदाम

श्री अरहन्त महान जिनेश, नमित चरणों में सर्व सुरेश।
हुए तीर्थंकर आप प्रधान, श्री सर्वज्ञ जिनेश महान॥
जगा सोलह कारण का भाव, भावना भाई ज्ञान स्वभाव।
बंधा तीर्थंकर गोत्र महान, मिला स्वर्गों का साता यान॥

तजा सुर-सुख भी नश्वर जान, मनुज भव पाया श्रेष्ठ महान।
हुये कल्याण अनेकों प्राप्त, धार कर संयम हो गये आप्त॥
समवसृत में राजे तत्काल, दिया उपदेश महान विशाल।
कोटि रवि शशि का तेज विशाल, हो गया मन्द देख तत्काल॥
देव दुन्दुभियाँ गूँजी नाथ, अनाथों को प्रभु किया सनाथ।
तुम्हें वंदन है नाथ त्रिकाल, तुम्हें लखते ही हुआ निहाल॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान तीर्थंकर- अर्हन्तजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

समवशरण में शोभित जिन पूजन करूँ।
अन्तर्मुख जिनवर छवि नित उर में धरूँ॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

***

भजन

निरखी-निरखी मनहर मूरति, तोरी हो जिनन्दा।
खोई-खोई आतम निज-निधि, पाई हो जिनन्दा॥ टेक॥
मोह दुःख का घर है मैंने, आज सरासर देखा है।- २
आतम धन के आगे झूठा, जग का सारा लेखा है॥- २
मैं अपने में घुल-मिल जाऊँ, तो पाऊँ जिनन्दा॥ १॥
तू भवनाशी मैं भववासी, भवसागर से तिरना है।- २
शुद्ध-स्वरूपी तुझसा बनकर, शिवरमणी को वरना है॥- २
मैं अपने में ही रम जाऊँ, वर पाऊँ जिनन्दा॥ २॥
नादानी में अबलों मैंने, पर को अपना माना है।- २
काया की माया में भूला, तुझको नहीं पहचाना है॥- २

3

समवशरण स्थित मानस्तम्भ पूजन

स्थापना

सोरठा

मानस्तम्भ महान समवशरण जिनराज के।
उर में हर्ष महान चारों दिशि वन्दन करूँ॥

धूलिशाल के पास वीथी चहुँ दिशि दिव्य हैं।
तीन कोट त्रय पीठ शोभित मानस्तम्भ हैं॥

सबके ऊपर बिम्ब चार-चार अरहन्त के।
रत्नमयी दृष्टव्य सोलह की पूजन करूँ॥

होता मान विलीन इनके दर्शन से त्वरित।
विनय भाव उत्पन्न तत्क्षण होता भव्य को॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमानश्रीजिनबिम्बसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमानश्रीजिनबिम्बसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इतिस्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमानश्रीजिनबिम्बसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

गीतिका

मान पर्वत चूर्ण कर मैं भाव श्रुत ज्ञानी बनूँ।
आर्त रौद्र विनाश कर निज तत्व श्रद्धानी बनूँ॥
राग से रंजित न होऊँ ज्ञान जल पाऊँ प्रभो।
श्रेष्ठ मानस्तम्भ के जिन बिम्ब नित ध्याऊँ प्रभो॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामिति स्वाहा।

गगन से यदि वज्र द्रुतगति से गिरे मम शीष पर।
तो न चंचलता हृदय हो भाव हो गंभीर वर॥
सहज चंदन सलिल शीतल विनयमय उर में धरूँ।
श्रेष्ठ मानस्तम्भ के जिनबिम्ब नित पूजन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वर्ग सुख से गिरा, एकेन्द्रिय हुआ भव दुःख सहा।
दुःखों का सागर मिला प्रभु मैं उसी में ही बहा॥
विनय अक्षत हृदय लाऊँ मान अरि को क्षय करूँ।
श्रेष्ठ मानस्तम्भ के जिनबिम्ब नित पूजन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मिली मायामयी तरणी, अतः प्रभु पशुगति मिली।
नाव पायी मनुज गति की तो कली उर की खिली॥
विनंय भाव सुपुष्प लाऊँ काम-शर पीड़ा हरूँ।
श्रेष्ठ मानस्तम्भ के जिनबिम्ब नित पूजन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निकट समकित मित्र आया तो उसे ठुकरा दिया।
भाव संयम पास आया उसे भी संग ना लिया॥
विनयमय नैवेद्य लाऊँ क्षुधा की पीड़ा हरूँ।
श्रेष्ठ मानस्तम्भ के जिनबिम्ब नित पूजन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चलन मेरा बदचलन लख हर्ष से मिथ्यात्व ने।
भ्रमित करके दुख दिया है देह के एकत्व ने॥
विनय भावी दीप लाऊँ प्रकाशित निज गुण करूँ।
श्रेष्ठ मानस्तम्भ के जिनबिम्ब नित पूजन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकार--विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निगोदों के कूप में ही रहा नाथ अनादि से।
जन्म अष्टादश मरण दुःख श्वास इक भव व्याधि से॥
विनय भावी धूप लाऊँ कर्मवसु बन्धन हरूँ।
श्रेष्ठ मानस्तम्भ के जिनबिम्ब नित पूजन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्म--विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

घोर घनगर्जन हुआ शुभ भाव का मेरे लिये।
त्वरित फिर पर्याय बदली सुख दिया मेरे लिये॥
भाव श्रुत फल महामहिमामय हृदय में अब धरूँ।
श्रेष्ठ मानस्तम्भ के जिनबिम्ब नित पूजन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

मिल गयी सम्यकत्व की निधि और संयम भी मिला।
चिर प्रमाद विनाश लख कर कषायों का गढ़ हिला॥
आत्मध्यानी के लिये तो चाहिये बस शुक्ल ध्यान।
गुणस्थानातीत होगा ध्यान फल सबसे महान॥
विनय अर्घ्य करूँ समर्पित पद अनर्घ्य अभी वरूँ।
श्रेष्ठ मानस्तम्भ के जिनबिम्ब नित पूजन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

सरसी

समवशरण की पूर्व दिशा में मनहर मानस्तम्भ।
मानी जीवों का हो जाता मान देखते भंग॥
पूरब वापी नन्दोत्तरा, सुदक्षिण नन्दा जान।
पश्चिम नन्दमती हैं उत्तर नन्दीघोषा मान॥
अष्टमदों से रहित शुद्ध सम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ।
भक्ति सहित मैं अर्घ्य चढाऊँ विनय हृदय धर लूँ॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणपूर्वदिशास्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दक्षिण मानस्तम्भ वापिका चार नीर भरपूर।
क्षय हो जाता मान त्वरित, हो विनय भाव आपूर॥
पूर्व विजय वापी दक्षिण में सरस वैजयंती।
पश्चिम वापि जयंती उत्तर अपराजिता लखी॥
अष्टमदों से रहित शुद्ध सम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ।
भक्ति सहित मैं अर्घ्य चढ़ाऊँ विनय हृदय धर लूँ॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणदक्षिणदिशास्थित मानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्य-पदपाप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम मानस्तम्भ चार दिशि चार वापिकायें।
मान कषाय नाश कर भायें विनय भावनायें॥
पूर्व अशोका दक्षिण में सुप्रबुद्धा मनभावन।
पश्चिम कुमुदा वापि पुण्डरीका उत्तर में गिन॥
अष्टमदों से रहित शुद्ध सम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ।
भक्ति सहित मैं अर्घ्य चढ़ाऊँ विनय हृदय धर लूँ॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणपश्चिम दिशास्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्य-पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर मानस्तम्भ चार दिशि चार वापिकायें।
अन्तर मन पुलकित हो जाता साध साधनायें॥
पूरब हृदयानन्द महानन्दा दक्षिण जानो।
सुप्रतिबुद्धा पश्चिम उत्तर प्रभंकरा मानो॥
अष्टमदों से रहित शुद्ध सम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ।
भक्ति सहित मैं अर्घ्य चढ़ाऊँ विनय हृदय धर लूँ॥ ४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणउत्तरदिशास्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

वीरछन्द

मानस्तम्भ देखते ही गौतमजी को निज भान हुआ।
मान भाव सब नष्ट हो गया तत्क्षण सम्यग्ज्ञान हुआ॥
मुनिव्रत धारण कर गौतम ने महावीर को किया प्रणाम।
खिरने लगी दिव्य ध्वनि प्रभु की गौतम ने झेली वसुयाम॥
द्वादशांग जिन-श्रुत रचना की तब अन्तर्मुहूर्त में श्रेष्ठ।
चार ज्ञान के धारी गणधर हुए सभी मुनियों में ज्येष्ठ॥

दोहा

महा-अर्घ्य अर्पण करूँ मानस्तम्भ महान।
विनय महापति मैं बनूँ करूँ आत्मकल्याण॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

द्वादश अनुप्रेक्षा परम ज्ञानमयी हितकार।
हो उपयोग अभीक्ष्ण तो सब को मंगलकार॥

रोला

इन्द्रिय भोग विषय बुद- बुद सम सब क्षणभंगुर।
अजर अमर शुद्धात्म तत्त्व ही शाश्वत सुन्दर॥
क्षणवर्ती जग में शाश्वत चैतन्य शरण है।
महा अटल सम्यक्त्व रूप भव रोग हरन है॥
भवातीत सुखलीन दशा में हो निज चिन्तन।
यदि अभीक्ष्ण चिन्तन हो तो शुद्धात्म सुख सदन॥
एकाकी निःसंग शुद्ध ध्रुव ज्ञान रूप है।
यह एकत्व भावना ही अपना स्वरूप है॥
हूँ जड़ तन में किन्तु नहीं जड़ तन है मेरा।
मात्र यही पार्थक्य बोध शिवसुख का चेरा॥
पृथक देह है कर्म रहित हूँ सुख अनन्तमय।
नश्वर अशुचि अमरता शुचि है ज्ञान बोधमय॥
मोक्षमार्ग में कर्मास्त्रव धारा दुःखदायी।
आस्त्रव अनुप्रेक्षा चिन्तन ही है सुखदायी॥
आस्त्रव की अवरुद्ध क्रिया ही उत्तम संवर।
सतत निरन्तर निज चिन्तन सुखमय अविनश्वर॥
मैं ज्ञायक हूँ कुछ सम्बन्ध नहीं विभाव से।
कर्म निर्जरा होती है चिन्तन स्वभाव से॥
चारों गतिमय तीन लोक में सदा भ्रमा में।
ज्ञाता दृष्टा नहीं बना भव मध्य रमा मैं॥
आत्म बोध उद्भव होते ही बोधि मिल गयी।
दुर्लभ सम्यक् ज्ञान मिला उर कली खिल गयी॥

धर्म भावना सतत् निरन्तर रहे जागृत ।
निजस्वभाव पुरुषार्थ शक्ति से पद लूँ शाश्वत ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितमानस्तम्भे विराजमन्तः जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

चान्द्रायण

पूजे मानस्तम्भ चार जिनराज प्रभु ।
समवशरण में आत्मशरण लूँ आज विभु ॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो ।
जिन पूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ विभो ॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

***

भजन

निरखो अंग-अंग जिनवर के, जिनसे झलके शान्ति अपार ॥ टेक ॥
चरण-कमल जिनवर कहें, घूमा सब संसार ।
पर क्षण-भंगुर जगत में, निज आत्म-तत्त्व ही सार ।
यातें पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ॥ १ ॥
हस्त-युगल जिनवर कहें, पर का करता होय ।
ऐसी मिथ्या बुद्धि से, भ्रमण-चतुर्गति होय ।
यातें पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ॥ २ ॥
लोचन-द्वय जिनवर कहें, देखा सब संसार ।
पर दुःखमय गति-चार में, ध्रुव-आत्मतत्त्व ही सार ।
यातें पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ॥३ ॥
अन्तर्मुख-मुंद्रा अहो, आत्मतत्त्व दरसाय ।
जिन-दर्शन कर निज दर्शन पा, सत-गुरु-वचन सुहाय ।
यातें अन्तर्दृष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ॥ ४ ॥

4

चैत्य प्रासाद भूमि पूजन

स्थापना

चान्द्रायण

भूमि चैत्य प्रासाद मनोहर जानिये।
समवशरण की प्रथम भूमि यह मानिये॥
रत्नजड़ित है दिव्य भूमि शोभा मयी।
धूलि शाल के बाद स्वर्ण निर्मित यही॥

पांच पांच प्रासाद चतुर्दिक पंक्ति भव्य।
अन्तराल से इक इक जिनमंदिर सुनव्य॥
भव्य नाट्य ग्रह हैं बत्तीस प्रसिद्ध सम।
है बत्तीस रंग शालायें दिव्यतम॥

वलयाकार दिशा चारों में पूर्ण योग्य।
सुरबालायें जहाँ नृत्य करतीं मनोज्ञ॥
मंगल गान मनोहर होते हैं यहाँ।
महा भाग्य से प्रवेश होता है यहाँ॥

यहीं खड़े हो जिनवर की पूजन करूँ।
भावमयी ले द्रव्य चरण अर्चन करूँ॥
जिन दर्शन का मंगल फल पाऊँ प्रभो।
सहज शुद्ध ज्ञायक में रम जाऊँ प्रभो॥

दोहा

अष्ट अंग सम्यक्त्व के भवदधि तारण हार।
यदि वह अंग विहीन है तो भव का है भार॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितचैत्यप्रासादभूमियुक्ततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इतिआह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितचैत्यप्रासादभूमियुक्ततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितचैत्यप्रासादभूमियुक्ततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

नि:शंकित जलधारा लाऊँ, निज परिणति को नह्वन कराऊँ।
विपरीताभिनिवेश विनाशूँ, चैत्य भूमि लख आत्म प्रकाशूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितचैत्यप्रासादभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

नि: कांक्षित चंदन स्व विकाशा, तजूँ इन्द्र चक्री पद आशा।
भोग न चाहूँ यह भव परभव, चैत्य भूमि निरखूँ निज अभिनव॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितचैत्यप्रासादभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्विचिकित्सक अक्षत लाऊँ, मुनि-तन मलिन न देख घृणाऊँ।
मुनि आभूषण रत्नत्रय हैं, चैत्य भूमि सुन्दर सुखमय है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितचैत्यप्रासादभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प अमूढ़दृष्टि के लाऊँ, सम्यक् देव धर्म गुरु पाऊँ।
धर्माभास न मुझे सुहाये, चैत्य प्रसाद भूमि निज भाये॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितचैत्यप्रासादभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनायं पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

उपगूहन चरु शुद्ध धरूँ मैं, निज स्वभाव गुण वृद्धि करूँ मैं।
दोष ढकूँ साधर्मी जन के, चैत्य भूमि निरखूँ निज मन से॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितचैत्यप्रासादभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्थितिकरण दीप उजियारूँ, अपने निज परिणाम संवारूँ।
धर्म मार्ग से डिगतों को लख, आत्म भूमि में उनको थिर रख॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितचैत्यप्रासादभूमियुक्ततीर्थंकरजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

वात्सल्य की धर्म धूप हो, निज स्वभाव निर्मल अनूप हो।
साधर्मी से प्रेम करूँ मैं, गौ बछड़े सम प्रीत धरूँ मैं॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितचैत्यप्रासादभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्म मार्ग की कर प्रभावना, आत्म-तत्त्व की करूँ साधना।
धर्म सुतरु फल शुद्ध भावना, मुक्ति मार्ग की यही साधना॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितचैत्यप्रासादभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निःशंकादिक अष्ट अंगमय, अर्घ्य चढ़ाऊँ दृढ श्रद्धामय।
पद-अनर्घ्य अविनाशी पाऊँ, अष्ट अंग की महिमा गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितचैत्यप्रासादभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

वीरछन्द

पूर्व दिशा स्थित जिनमंदिर भूमि चैत्य प्रासाद महान।
अर्घ्य चढ़ाऊँ जिनवर महिमा के ही गाऊँ जय-जयगान॥
रिद्धि-सिद्धियों से सुदूर रह ज्ञान रिद्धि पाऊँ अविकार।
पद्मरागमणि सम गुण दमकें पाऊँ परमानंद अपार॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य चैत्यप्रासादभूम्यां पूर्वदिशास्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तयें अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दक्षिण दिशि श्री जिनचैत्यालय भूमि चैत्य प्रासाद महान।
तीर्थंकर जिन समवशरण में नाचूँ गाऊँ मंगल गान॥
होनहार भवितव्य अटल है जिन प्रवचन में आया है।
पर में कर्त्ताबुद्धि हटाऊँ भाव हृदय में आया है॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य चैत्यप्रासादभूम्यां दक्षिणदिशास्थितजिनालय जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम दिशा श्री चैत्यालय भूमि चैत्य प्रासाद विचित्र।
भव रोगों की सर्व व्याधियों से विरहित मैं परम पवित्र॥
जिन रवि तेज दृष्ट होते ही आत्म ऊर्जा होती प्राप्त।
अर्घ्य चढ़ाऊँ जिन गुण गाऊँ हो जाऊँ प्रभु मैं भी आप्त॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य चैत्यप्रासादभूम्यां पश्चिमदिशास्थितजिनालय जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर दिशा जिनालय सुन्दर भूमि चैत्य प्रासाद प्रसिद्ध।
व्यय-उत्पाद ध्रौव्य सतरूपी गुण पर्याय द्रव्य सत् सिद्ध॥
क्षय एकांतवाद करने में स्याद्वाद है पूर्ण समर्थ।
यह ज्ञानार्घ्य चढ़ाऊँ पाऊँ तत्त्व ज्ञान औषधि अव्यर्थ॥ ४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य चैत्यप्रासादभूम्यां उत्तरदिशास्थितजिनालयजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

आज चैत्य प्रासाद भूमि को लखकर स्वामी हुआ निहाल।
चार दिशा के चैत्यालय की शोभा पावन परम विशाल॥
सहज ज्ञान का दीप जलाऊँ ज्ञान ज्योति पाऊँ अविकार।
महा अर्घ्य अर्पित करके शिव सुख पाऊँ मैं अपरम्पार॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थित चैत्यप्रासादभूमिभूषित तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

सम्यग्दर्शन मुक्ति का प्रथम श्रेष्ठ सोपान।
जो धारण करते इसे पाते पद निर्वाण॥
सम्यग्दर्शन हेतु हम करते तत्त्व विचार।
मैं हूँ परमानन्दमय समयसार अविकार॥

मानव

पावन समकित बन पाहुन, आए चेतन के अंगना।
पायलिया बजी सुमति की बाजे समता के कंगना॥
चिर प्यासी उर सीपी में समकित के मोती बरसे।
चिन्तामणि रत्न मिला रे जिसको भव-भव से तरसे॥
द्वादश भावना मनोरम रमणीय नृत्य करती हैं।
वैराग्य भाव की मन में भावना भव्य भरती हैं॥
जीवों की करुणा गहरी उर में हृदयस्पर्शी है।
यह बन्ध मोक्ष के प्रति भी अन्तर में समदर्शी है॥
समता रसमय अमृत की अन्तर में धारा बहती।
चारित्र ज्ञान की गंगा साधना साधती रहती॥
श्रद्धा की वन्दनवारें जिन में विवेक की लड़ियाँ।
संशय का लेश न किंचित आईं अनुभव की घड़ियाँ॥
वसुधा की माया ममता बहका न इसे पायेगी।
मद मोह लोभ की छलना हारेगी थक जायेगी॥
बाह्यान्तर में मुनि मुद्रा होगी निर्ग्रन्थ दिगम्बर।
चरणों में झुक जाएगा सादर विनीत भू अम्बर॥
ज्ञानी के अन्तस्तल में चमकी त्रिगुप्ति की मणियाँ।
तप द्वारा कर्म झरेंगे टूटेंगी भव की कड़ियाँ॥
सुखसागर कर्म जयी बन भव का प्रचन्ड दुख हरकर।
निर्वाण प्राप्त कर लेगा घट में अखण्ड सुख भरकर॥
यश तिलक शुभ्र हीरे सम जगमग जगमग दमकेगा।
जगती में गौरव गाथा का विमल चन्द्र चमकेगा॥

नर से अर्हन्त सिद्ध हो त्रैलोक्य पूज्य अविनाशी।
संसार विजेता होगा जिसने निज ज्योति प्रकाशी॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थित चैत्यप्रासादभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

भूमि चैत्य प्रासाद ज्ञान मुझको हुआ।
निज स्वरूप का सम्यक् भान मुझे हुआ॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत

भजन

(तर्ज- करुणा सागर भगवान, भव पार लगा देना)

अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे।
अविरुद्ध शुद्ध चिद्घन, उत्कर्ष तुम्हीं मेरे॥ टेक॥

सम्यक्त्व सुदर्शन ज्ञान अगुरुलघु अवगाहन।
सूक्ष्मत्व वीर्य गुणखान, निर्बाधित सुखवेदन॥
हे गुण अनन्त के धाम, वन्दन अगणित मेरे॥ १॥

रागादि रहित निर्मल, जन्मादि रहित अविकल।
कुल गोत्र रहित निश्कुल, मायादि रहित निश्छल॥
रहते निज में निश्चल, निष्कर्म साध्य मेरे॥ २॥

रागादि रहित उपयोग, ज्ञायक प्रतिभासी हो।
स्वाश्रित शाश्वत-सुख भोग, शुद्धात्म-विलासी हो॥
हे स्वयं सिद्ध भगवन, तुम साध्य बनो मेरे॥ ३॥

भविजन तुम-निज-सम-रूप, ध्याकर तुम-सम होते।
चैतन्य-पिण्ड शिव-भूप, होकर सब दुःख खोते॥
चैतन्यराज सुखखान, दुख दूर करो मेरे॥ ४॥

5

खातिका भूमि पूजन

स्थापना

चान्द्रायण

द्वितीय खातिका भूमि अनूठी जानिये।
प्रासुक जल से भरी हुई है मानिये॥
जलचर प्राणी करते केलि सदैव ही।
दोनों तट की छवि है महा मनोज्ञ ही॥

रत्नों के सोपान तटों पर दर्शनीय।
श्री जिनेन्द्र ही तीन लोक में वन्दनीय॥
चार वीथियां चारों दिशि में दिव्य हैं।
चारों तोरण द्वार यहाँ दृष्टव्य हैं॥

विजय द्वार की अनुपम शोभा देखिये।
गोपुर परम मनोज्ञ हृदय पर लेखिये॥
समवशरण का गौरव अपरम्पार है।
समवशरण यहअहा मुक्ति का द्वार है॥

श्री तीर्थंकर दर्शन कर पूजन करूँ।
परम भक्ति से आत्म देव वंदन करूँ॥
आत्मज्ञान से निज स्वभाव को जानकर।
सम्यग्ज्ञान ज्योति से उर पावन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितखातिकाभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इतिआह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितखातिकाभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इतिस्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितखातिकाभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

चौपाई

निज स्वरूप आतम का पावन, अनेकान्तात्मक मन भावन।
संशय मोह विपर्यय विरहित, एकान्तिक अज्ञान मल रहित॥
भूमि खातिका है सुखकारी, जिनवर पूजन भवदुखहारी।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकाशक, निज में निज ज्ञायक दरशायक॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितखातिकाभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्य पदार्थ तत्व निर्णय कर, अनेकान्त को हृदयंगत कर।
निज चंदन शीतल स्वभावमय,करता है संसार ताप क्षय॥
भूमि खातिका है सुखकारी, जिनवर पूजन भव दुखहारी।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकाशक, निज में निज ज्ञायक दरशायक॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितखातिकाभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय संसार-ताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षर अर्थ शब्द पहचानूँ, अर्थ वाक्य पद शुद्ध पिछानूँ।
अक्षत लाऊँ ज्ञानमयी मैं, अक्षय पद लूँ जगज्जयी मैं॥
भूमि खातिका है सुखकारी, जिनवर पूजन भव दुखहारी।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकाशक, निज में निज ज्ञायक दरशायक॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितखातिकाभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मन-वच-काया शुद्धि पूर्वक, विनय भाव हो ज्ञान पूर्वक।
शुद्ध पुष्प कंदर्पजयी हो, शुद्ध भाव उर ध्यान मयी हो॥
भूमि खातिका है सुखकारी, जिनवर पूजन भव दुखहारी।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकाशक, निज में निज ज्ञायक दरशायक॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितखातिकाभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

काल शुद्धि आराधन सम्यक, शुद्ध अनिन्हव भाव हों अथक।
जड़ नैवेद्य न अब खाऊँगा, निराहारि जीवन पाऊँगा॥
भूमि खातिका है सुखकारी, जिनवर पूजन भव दुखहारी।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकाशक, निज में निज ज्ञायक दरशायक॥

ॐ ह्री श्री समवशरणस्थितखातिकाभूमिभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विनयाचार न हो उद्वत प्रभु, हो उपध्यानाचार हृदय विभु।
स्व-पर प्रकाशक दीप सजाऊँ, ध्रुव की धुन के वाद्य बजाऊँ॥
भूमि खातिका है सुखकारी, जिनवर पूजन भव दुखहारी।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकाशक, निज में निज ज्ञायक दरशायक॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरण स्थितखातिकाभूमिभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

है व्यंजन आचार शब्दमय, अर्थाचार प्रयोजन सुखमय।
धूप धर्म की मैंने पायी, अंतिम काल लब्धि अब आयी॥
भूमि खातिका है सुखकारी, जिनवर पूजन भव दुखहारी।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकाशक, निज में निज ज्ञायक दरशायक॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितखातिकाभूमिभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

उभयाचार ज्ञान हो पूरा, कालाचार भान हो पूरा।
सम्यग्ज्ञान सुफल प्रभु पाऊँ महामोक्ष लक्ष्मी को पाऊँ॥
भूमि खातिका है सुखकारी, जिनवर पूजन भव दुखहारी।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकाशक, निज में निज ज्ञायक दरशायक॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितखातिकाभूमिभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठ अंग हैं यही ज्ञान के, यही उच्च ध्वज हैं स्वयान के ।
शुद्धातम का ज्ञान उदय हो, ध्रौव्य त्रिकाली ध्येय हृदय हो ॥
भूमि खातिका है सुखकारी, जिनवर पूजन भव दुखहारी ।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकाशक, निज में निज ज्ञायक दरशायक ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितखातिकाभूमिभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्र अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अर्घ्यावली

वीरछन्द

दिव्य खातिका पूर्व दिशान्तर से पूजूँ अर्हन्त जिनेश ।
समवशरण की रचना को लख हर्षित होते सभी सुरेश ॥
अस्ति नास्ति वक्तव्य स्यात्युत अव्यक्तव्य सत् है ज्ञातव्य ।
श्री जिनवर को अर्घ्य चढ़ाऊँ ज्ञान प्राप्ति का है मन्तव्य ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्यखातिकाभूम्यां पूर्वदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दिव्य खातिका दक्षिण दिशि से पूजूँ मैं अरहंत महान ।
समवशरण के दर्शन करके पाया मैंने स्वर्ण विहान ॥
विश्व अनादि-अनंत जानकर निज को मैं अखण्ड जानूँ ।
अर्घ्य चढ़ाऊँ आत्म द्रव्य अविनश्वर को मैं पहिचानूँ ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य खातिकाभूम्यां दक्षिणदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दिव्य खातिका पश्चिम तट से वन्दूँ गुणपति श्री जिनराज ।
भक्तिपूर्वक अर्घ्य चढ़ाऊँ मैं भी पाऊँ सिद्ध समाज ॥
विश्व व्यवस्था को पहिचानूँ आगम का हो सम्यक्ज्ञान ।
करूँ भावश्रुतज्ञान हृदय में जय जय तीर्थंकर भगवान ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य खातिकाभूम्यां पश्चिमदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दिव्य खातिका उत्तर तट से पूजूँ मैं त्रिभुवनपति ईश।
समवशरण में अंतरीक्ष प्रभु तीन छत्र शोभित जगदीश ॥
पंचकल्याणक भूषित स्वामी करो हमारा भी कल्याण।
निज भावों के अर्घ्य चढ़ाऊँ मोक्षमार्ग में करूँ प्रयाण ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य खातिकाभूम्यांउत्तरदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

दिव्य खातिका के उज्जवल जल से कालुषता धो डालूँ।
निज स्वभाव रुचि अंकुर उपजा जीवन भर उसको पालूँ ॥
भूमि खातिका है प्रासुक जलमयी मनोहर अति सुन्दर।
जलचर जीव केलि करते हैं, प्रमुदित होते नारी नर ॥
महा-अर्घ्य अर्पित करने को प्रासुक द्रव्य सजा लाया।
जिन-चरणों में अर्पण करके मैंने महा-सौख्य पाया ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितखातिकाभूमि भूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

जगी भावना बलवती पाऊँ पद निर्वाण।
एक बार तो दो प्रभो मुझको सम्यक् ज्ञान ॥

मरहठा माधवी

मति श्रुत अवधि मनः पर्यय अरु केवलज्ञान महान है।
कुमति कुश्रुत कुअवधित्रयी तो पूर्णतया अज्ञान है ॥
आठ ज्ञान के भेद यही हैं ना कोई परतंत्र है।
केवलज्ञान अनंत बलमयी यह असहाय स्वतंत्र है ॥

अवधिज्ञान सीमित होता है भूत भविष्य विद्य ज्ञाता।
युगपत केवलज्ञान त्रिकाल त्रिलोक सर्व का विज्ञाता॥
मति पूर्वक ही श्रुत होता है, भलीभांति यह जान लो।
श्रुत होता प्रत्येक जीव को सभी काल में मान लो॥
ज्ञान मनः पर्यय की महिमा छठवें गुणस्थान वाले।
आहारक शरीर है जिनका जो हैं ऋद्धि सिद्धि वाले॥
कुमति कुश्रुत कुअवधि ज्ञान तो अज्ञानी को ही होता।
मात्र द्रव्यलिंगी होते जो, उनको भी ये ही होता॥
कुअवधि विभंगावधि कहलाता, जो दुखमयी सदा सर्वत्र।
इसके कारण महामूढ़ दुख पाते हैं सर्वत्र विचित्र॥
अतः नाथ मैं सम्यक् ज्ञान प्राप्ति का ही पुरूषार्थ करूँ।
मात्र आत्म-कल्याण हेतु मैं परमज्ञान सत्यार्थ वरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितखातिकाभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

समवशरण की भूमि खातिका दर्शनीय।
तीर्थंकर जिनवर की महिमा वन्दनीय॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिन पूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

* * *

6

लता भूमि पूजन

स्थापना

रोला

भूमि खातिका के पश्चात द्वितीय वेदी है।
तोरण द्वार निकट ही सुस्थित भव छेदी है॥
गोपुर विनय द्वार अति सुन्दर शोभाशाली।
तीजी लता भूमि है अनुपम सुषमाशाली॥
विविध वर्ण की दिव्य लतायें हैं बहु शोभित।
तीन कोण चौकोण वापिका लख सब मोहित॥
छोटे छोटे वन उपवन हैं महा मनोहर।
समवशरण में लता भूमि की शोभा सुन्दर॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितलताभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर (इति आह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितलताभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्र ! तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इतिस्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितलताभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इतिसन्निधिकरणम्)

तांटक.

भव सागर जल चरण चढ़ाकर भी प्रभु भव दुःख पाये हैं।
जन्म-जरा अरु मृत्यु व्याधि का नाश नहीं कर पाये हैं॥
पंच महाव्रत पंच समिति त्रय गुप्ति हृदय में धारूँगा।
तेरह-विध चारित्र पाल निज तरणी पार उतारूँगा॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितलताभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ भावों के चन्दन घिस घिस मैंने सदा चढ़ाये हैं।
जिसके फल में बहुत बार यह नश्वर सुर-सुख पाये हैं॥
उत्तम धर्म अहिंसा धारूँ पूर्ण अहिंसक बन जाऊँ।
उत्तम सत्य धर्म पालन कर आत्मस्वरूप सदा ध्याऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितलताभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

भाव रहित तन्दुल सुवासमय तुमको सदा चढ़ाये हैं।
भव समुद्र से पार उतरने के भी समय गँवाये हैं॥
पालूँ मैं अस्तेय महाव्रत बिन आज्ञा परवस्तु न लूँ।
ग्रहण त्याग का तज विकल्प प्रभु अक्षय पद निज उज्जवल लूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितलताभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

काम कषाय परिग्रह त्यागूँ बनूँ अनिच्छुक मुनि ध्यानी।
पुष्प चढ़ाये हैं अनगिनती काम रोग वर्धक स्वामी॥
घोर काम पीड़ा से पीड़ित चहुँगति दुःख पाया नामी।
शील महाव्रत पालन करके हो जाऊँ केवलज्ञानी॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितलताभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

रस पूरित नैवेद्य चढ़ाये प्रतिदिन क्षुधा व्याधिवर्धक।
चिर अतृप्ति व्यापी है उर में तृप्ति न पायी प्रभु अब तक॥
पाऊँ इर्यासमिति नाथ मैं चार हाथ भू शोध चलूँ।
भाषा समिति सदा ही पालूँ मौन भाव से पाप दलूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितलताभूमिभूषितश्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

स्वर्ण रजत के दीप चढ़ाये घृत अज्ञान भरे स्वामी।
मोह भाव क्षय हुआ न अब तक दुःख पाये अन्तरयामी॥

पालूँ समिति ऐषणा, भोजन अन्तराय टालूँ फिर लूँ।
निक्षेपण आदान समिति मैं उठा धरी शोधन कर लूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितलताभूमिभूषित-श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय महामोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

मलयागिरी सुधूप अग्नि में मैंने सदा जलाई है।
कर्मबन्ध की क्रूर श्रंखला मैंने सतत बढ़ाई है॥
प्रतिष्ठापना समिति देहमल शोधित भूपर ही डालूँ।
पांचों समिति जीव रक्षा के हेतु निरन्तर ही पालूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितलताभूमिभूषित-श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

पुण्य-पाप रसमय कटु फल से मोक्ष सुफल कैसे मिलता ।
आत्मज्ञान फल बिना नाथ कैसे निजसुख सरसिज खिलता॥
मन वच काय त्रिगुप्ति पूर्ण पालन कर अचल भाव लाऊँ।
ये ही तीनों गुप्ति मोक्ष हित अन्तरंग निज मैं लाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितलताभूमिभूषित- श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामिति स्वाहा।

जल फलादि के अर्घ्य सजाकर तुम्हें चढ़ाये बारम्बार।
पद अनर्घ्य क्या दृष्टित होता चहुंगति दुःख पाये हर बार॥
प्रभो ! त्रयोदश विधि चारित्र महा विशुद्ध उर में धारूँ।
निर्ग्रन्थेश अवस्था पाकर भवदधि से निज को तारूँ॥
ज्ञान-लता लहराये उर में लता भूमि सम हे स्वामी।
रत्नत्रय की भक्ति हृदय में पूरी हो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितलताभूमिभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

वीरछन्द

पूर्व दिशा की लता भूमि से सविनय पूंजूँ श्री अरहन्त।
समवशरण में गंधकुटी पर अंतरीक्ष राजे भगवन्त॥
निश्चय अरु व्यवहार जानकर नयातीत मैं हो जाऊँ।
अर्घ्य चढ़ाऊँ निज स्वभाव के निज भावों में खो जाऊँ॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य खातिकाभूम्यां पूर्वदिशातःदृश्यमान तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दक्षिण दिशि की लता भूमि से सविनय पूजूँ तीर्थंकर।
समवशरण में द्वादश सभा जुड़ी है अति उत्तम सुन्दर॥
एकानेक अतत्व-तत्वमय नित्य अनित्य अरु भेद-अभेद।
जान सप्तनय अर्घ्य चढाऊँ भव स्थिति दूँ पूरी छेद॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य खातिकाभूम्यां दक्षिणदिशातः दृश्यमान तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम दिशि की लता भूमि से हाथ जोड़ पूंजूँ अरहंत।
श्रीमंडप की तृतीय पीठ पर श्री जिनेन्द्र हैं महिमावंत॥
क्रोध मान छल और लोभ के भावों पर मैं विजय करूँ।
अर्घ्य चढ़ाऊँ चार चौकड़ी युत कषाय सम्पूर्ण हरूँ॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्यखातिकाभूम्यां पश्चिमदिशातःदृश्यमान तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर दिशि की लता भूमि से सादर पूंजूँ श्री अरहन्त।
तीर्थंकर के पृष्ठ भाग में तरु अशोक है अति छविवन्त॥
गुणस्थान बारहवाँ पाऊँ नष्ट घातिया चार करूँ।
गुण अनंत निज सागर पाऊँ अर्घ्य चढ़ा भव भाव हरूँ॥ ४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य खातिकाभूम्यां उत्तरदिशातः दृश्यमान तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

लता भूमि है भूमि खातिका के पश्चात महा मनहर।
बनी वापिकाएँ त्रिकोण चौकोन जलधि सम अति सुन्दर॥
विविध वर्ण की महा सुगंधित लघु अरु महा लताएँ श्रेष्ठ।
महा-अर्घ्य अर्पित करता हूँ नाशूँ राग द्वेष सब नेष्ट॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य खातिकाभूमिभूषित- तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

लता भूमि में जायकर पूजूँ श्री जिनराज।
निज स्वरूप का ध्यान हो, पाऊँ निज गुण राज॥

निज स्वभाव की साधना हो प्रभु बारह मास।
मुक्ति-सौख्य मैं पाऊँगा है मुझको विश्वास॥

मानव

यह चैत्र मास महिमामय दाता है समकित निधि का।
वैशाख ज्ञानमय पूरा दाता चारित्र सुविधि का॥
यह जेष्ठ मास संयमहित है पंच महाव्रत वाला।
आषाढ़ मास गरिमामय है निज अनुभव रसवाला॥
श्रावण आनन्द प्रदाता सप्तम षष्टम में झूलो।
भादव में शुद्ध व्रतों का पालन कर मन में फूलो॥
आश्विन भव विजय कराता कर्मारि नष्ट करता है।
कार्तिक जगमग दीपावलि उजियाला तम हरता है॥
मगशिर महान मंगलमय सम्यक्त्वाचरण प्रदाता।
है पौष शुद्ध शुचितामय दृढ शुकल ध्यान का ध्याता॥

है माघ महा मृत्युंजय पावन प्रतीक गुण सागर।
फाल्गुन होली का मौसम निज परिणति ले आयी घर॥
ध्रुव रंग ज्ञान के निरुपम यह बरसाता आया है।
आनन्द अतीन्द्रिय अनुपम मेरे उर में छाया है॥
बारह ही मास सलोने निज द्युति को दमकाते हैं।
परिपूर्ण सिद्ध पद के ही ध्रुव सूरज चमकाते हैं॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितलताभूमिभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

लता भूमि युत समवशरण विख्यात है।
आत्मज्ञान का झरता भव्य प्रपात है॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

* * *

भजन

ऊँचे ऊँचे शिखरों वाला रे, यह तीरथ हमारा।
तीरथ हमारा हमें लागे प्यारा॥ टेक॥
श्री जिनवर से भेंट करावें।
जग को मुक्ति मार्ग दिखावें॥
मोह का नाश करावे रे यह तीरथ हमारा॥ १॥
शुद्धातम से प्रीति लगावे।
जड़-चेतन को भिन्न बतावे॥
भेद-विज्ञान करावे रे यह तीरथ हमारा॥ २॥

7

उपवन भूमि पूजन

स्थापना

रोला

लता भूमि पश्चात कोट है भव्य स्वर्ण का।
धूलि शाल से दूना है विस्तार भूमि का॥
चौवीथी पर तोरण द्वार यक्ष रक्षक हैं।
गोपुर विजयद्वार सुन्दर निर्माण कनक हैं॥

दो दो बनीं नाट्य शालायें सोलह मनहर।
प्रथम आठ में भवनवासि बालायें सुन्दर॥
दूजें वसु में कल्पवासि बालायें तत्पर।
उनके मनहर गीत गान के गूंज रहे स्वर॥

यहाँ नृत्य मनहर होते हैं प्रतिपल प्रतिक्षण।
यह है उपवन भूमि जगत में बड़ी विलक्षण॥
इस ही वन में चैत्य वृक्ष हैं जिन प्रतिमा युत।
नन्दनवन है अशोक वन है बहु सुषमायुत॥

सप्तच्छद वन चंपक आम्र विभवशाली हैं।
स्वर्गों से चल सुर आये बनकर माली हैं॥
मलयज पवन सतत बहती है सन् सन् सन् सन्।
समवशरण की यह शोभा धरती पर धन धन॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितउपवनभूमिभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इति आह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितउपवनभूमिभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इतिस्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितउपवनभूमिभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

ताटंक

प्रथम लब्धि पायी क्षयोपशम थोड़ा सा श्रुतज्ञान हुआ।
उस पर इठलाया इतराया, किन्तु नहीं निज भान हुआ॥
पंच लब्धि जल चरण पखारें श्रद्धापूर्वक नित सानन्द।
समवशरण की उपवन भूमि उर में भरती है आनन्द॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितउपवनभूमिभूषित तीर्थंकरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मंद कषायें हुईं नाथ तो द्वितीय विशुद्धि लब्धि पायी।
किन्तु आत्मा शुद्ध बुद्ध है ऐसी समझ नहीं आयी॥
पंच लब्धियाँ ज्ञानमयी चन्दन चर्चित करती सानन्द।
समवशरण की उपवन भूमि उर में भरती है आनन्द॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितउपवनभूमिभूषित तीर्थंकरजिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मिली देशना लब्धि मुझे जब गुरुओं की संगति पायी।
किन्तु तत्त्व की सम्यक् श्रद्धा पल भर हृदय नहीं भायी॥
पंच लब्धियाँ स्वपर विवेक मयी अक्षत लाती सानन्द।
समवशरण की उपवन भूमि उर में भरती है आनन्द॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितउपवनभूमिभूषित तीर्थंकरजिनेन्द्राय अक्षय पदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मिली योग्यता तत्वज्ञान की चौथी लब्धि हुई प्रायोग्य।
किन्तु अभी तक आत्मज्ञान के नाथ न हो पाया मैं योग्य॥
पंच लब्धियाँ शील सुगुणमय पुष्प चढ़ाती हैं सानन्द।
समवशरण की उपवन भूमि उर में भरती हैं आनन्द॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितउपवनभूमिभूषित तीर्थंकरजिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ये चारों लब्धियाँ अनन्तों बार मिली अन्तरयामी।
इनके बल से ग्रीवक तक जाकर मैं मूढ रहा स्वामी॥
पंच लब्धियाँ अनुभव रस नैवेद्य सजाती हैं सानन्द।
समवशरण की उपवन भूमि उर में भरती है आनन्द॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितउपवनभूमिभूषित तीर्थंकरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

करण लब्धि पंचम से अब तक दूर रहा हूँ नाथ सदा।
सम्यग्दर्शन सम्मुख नाथ नहीं हो पाया अरे कदा॥
पंच लब्धियाँ ज्ञान दीप की ज्योति जलातीं हैं सानन्द।
समवशरण की उपवन भूमि उर में भरती है आनन्द॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितउपवनभूमिभूषित तीर्थंकरजिनेन्द्राय महामोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आज सु अवसर पाया है प्रभु करणलब्धि भी पायी है।
मुरझायी कलिका अन्तर की शुद्ध मोक्ष फल लायी है॥
पंच लब्धियाँ धर्म धूप की लाती हैं गुणनिधि सानन्द।
समवशरण की उपवन भूमि उर में भरती है आनन्द॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितउपवनभूमिभूषित तीर्थंकरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पाँचों ही समवाय मिले लब्धियाँ पाँच अब मुझे मिलीं।
मोक्ष सुतरु की मृदुकलिकायें श्रद्धा के संग स्वतः खिली॥
पंच लब्धियाँ उत्तम मोक्ष सुफल प्रदान करतीं सानन्द।
समवशरण की उपवन भूमि उर में भरती है आनन्द॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितउपवनभूमिभूषित तीर्थंकरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

महिमा मण्डित अर्घ्य चढ़ाऊँ समकित सन्मुख होने को।
इस भव में ही यत्न पूर्वक मुक्ति बीज प्रभु बोने को॥

पंच लब्धियाँ पद अनर्घ्य से भूषित करती हैं सानन्द।
समवशरण की उपवन भूमि उर में भरती है आनन्द॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितउपवनभूमिभूषित तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

वीरछन्द

पूर्व दिशा उपवन भू पर है, तरु अशोक शोभाशाली।
पूजूँ समवशरण सम्राट जिनेन्द्रदेव महिमाशाली॥
अर्घ्य चढ़ाऊँ अंतरंग बहिरंग शुद्धि के हेतु महान।
चौदहवें में क्षय अघातिकर पाऊँ सिद्ध स्व-पद निर्वाण॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्यउपवनभूम्यां पूर्वदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दक्षिण दिशि उपवन भू पर है, सप्तच्छद वन अभिराम।
समवशरण राजित तीर्थंकर पूजन करूँ नाथ वसुयाम॥
ज्ञात करूँ नयचक्र किन्तु मैं उलझूँ उसमें कभी न नाथ।
जब तक निजपद मिले न जिनवर तब तक गहूँ आपका साथ॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्यउपवनभूम्यां दक्षिणदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम दिशि उपवन भू पर है, चंपकवन सुषमा मनहर।
समवशरण राजित जिनेन्द्र को अर्घ्य चढाऊँ भाव प्रवर॥
निज अनुभवरसमयी सिन्धु पाने की अभिलाषा जागी।
अर्घ्य चढ़ाते ही हे स्वामी मेरी मिथ्या-मति भागी॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्यउपवनभूम्यां पश्चिमदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर दिशि उपवन भू पर है, श्रेष्ठ आम्रवन महिमावान।
समवशरणपति श्री जिनेन्द को अर्घ्य चढाऊँ भाव प्रधान॥

समकित औषधि मिली आज प्रभु भवाताप अब क्षय होगा।
धर्म चक्रवर्ती पद होगा जग का मोह विलय होगा ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य उपवनभूम्यां उत्तरदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

चौपाई

उपवन भू से भूषितं जिनवर, दर्शन कर हर्षित सुर किन्नर।
समवशरण में श्री जिनराजा, निज उपवन में चेतन राजा ॥
मैं चेतन-उपवन अति सुन्दर, गुण अनन्त के सुमन मनोहर।
सैतालिस शक्तियाँ चहकतीं, वीतरागता गन्ध महकती ॥
साधनकजन का आश्रयदाता, साध्यभाव प्रगटे विख्याता।
परिणति निज उपवन में रमती, पद अनर्घ्य अविनाशी वरती ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य उपवनभूमिभूषित-तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

पंच लब्धियाँ प्राप्तकर करूँ आत्म कल्याण।
सम्यग्दर्शन शक्ति से पाऊँ पद निर्वाण ॥

मत्तसवैया

हैं जीव चतुर्गति में अनन्त जिस में नरगति वाले असंख्य।
नरकों में जीव असंख्य और हैं देव लोक में भी असंख्य ॥
तिर्यंचों में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक होते अनन्त।
अपने परिणामों से पाते चारों गतियों में दुःख अनन्त ॥
यह नित्य निगोद महादुःखमय जिसमें अनादि से सभी जीव।
प्रतिपल प्रतिक्षण दुःख ही पाते फिर भी न चेत पाते कदीव ॥

सौभाग्य पुण्य का मिलता है तो मिलती त्रस पर्याय श्रेष्ठ।
जिसकी सीमा हैं दो हजार सागर फिर मिलें निगोद नेष्ठ॥

तेरह सौ साठ सागर सुर छह सौ चालीस है नर्क दुःख।
स्वर्गों में लघु साता पाता नरकों में मिलता घोर दुःख॥

त्रस पर्याय मिली साधिक विकलेन्द्रिय हो बहु दुःख पाये।
अड़तालिस पाये है नर भव जिनमें नहिं किञ्चित सुख पाये॥

आधे तो मिले अपर्याप्तक आधे पर्याप्तक मिले विभो।
नर के वसु नारी के भी वसु, वसु मिले नपुंसक सदा प्रभो॥

लब्धियाँ मिली चारों मुझको फिर भी कल्याण न कर पाया।
मिल सकी न करणलब्धि मुझको तीनों लोकों में भरमाया॥

त्रस अवधि पूर्ण करके प्राणी जाते हैं पुनः इतर निगोद।
संसार भाव जिसके भीतर वह पाता है मिथ्यात्व गोद॥

यों द्रव्य क्षेत्र भव भाव काल परिवर्तन पंच सतत पाये।
मद मोह वारुणी इतनी पी अब तक हम चेत नहीं पाये॥

यद्यपि स्वर्गों में साता है पर वह भी दुःखमय नश्वर है।
केवल प्राणी का निज स्वभाव ही शाश्वत है अविनश्वर है॥

मिथ्यात्व बंध जब तक रहता तब तक ही पंचपरावर्तन।
जब सम्यग्दर्शन होता है उड़ जाता सभी परावर्तन॥

जो पंच लब्धियाँ पाते हैं होते पुरुषार्थ साध्य उज्जवल।
वे मोक्ष-मार्ग पर आते हैं सम्यग्दर्शन लेकर निर्मल॥

हे रत्नाकर आदीश्वर योगीश्वर परमार्थ वादि जय जय।
निज ज्ञान तुला पर तुलूँ प्रभो सम्पूर्ण कर्म पर पाऊँ जय॥

गुरु की महान आज्ञा मानूँ अज्ञान लौह कुण्डल तज दूँ।
ज्ञानों के कुण्डल धारण कर चैतन्य स्वभाव सहज भज लूँ॥

सोरठा

पंच लब्धियाँ पाय, सम्यग्दर्शन उर धरूँ।
मोक्ष मार्ग पर आय, पाऊँ निज निर्वाण सुख ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितउपवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

समवशरण की उपवन भूमि महान है।
आत्मशरण ही जग में श्रेष्ठ प्रधान है॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिन पूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

* * *

भजन

तिहारे ध्यान की मूरत अजब छबि को दिखाती है।
विषय की वासना तज कर निजातम लौ लगाती है॥ टेक॥

तेरे दर्शन से हे स्वामी, लखा है रूप मैं मेरा।
तजूँ कब राग तन धन का ये सब मेरे विजाती हैं॥ १॥

जगत के देव सब देखे, कोई रागी कोई द्वेषी,
किसी के हाथ आयुध है, किसी को नार भाती है॥ २॥

जगत के देव हठ ग्राही, कुनय के पक्षपाती हैं,
तू ही सुनय का है वेत्ता, वचन तेरे अघाती हैं॥ ३॥

मुझे कुछ चाह नहीं जग की यही है चाह स्वामी जी,
जपूँ तुम नाम की माला जो मेरे काम आती है॥ ४॥

तुम्हारी छबि निरख स्वामी निजातम लौ लगी मेरे,
यही लौ पार कर देगी जो भक्तों को सुहाती है॥ ५॥

8

चैत्यवृक्ष पूजन

स्थापना

राधिका

हैं चैत्यवृक्ष चारों उपवन भू सुन्दर ।
हैं चार-चार जिनप्रतिमायें अति मनहर ॥
हैं अष्टप्रातिहार्यों से सब उद्योतक ।
हैं सोलह मानस्तंभ यहाँ मनमोहक ॥

मानस्तम्भों में जिन प्रतिमाऐं जानो ।
जिन समवशरण सर्वोत्तम जग में मानो ॥
ये ही कल्पद्रुम जो निज हृदय सजाता ।
वह समवशरण पति बनकर ध्रुव सुख पाता ॥

है मोक्षमार्ग इक त्रयकालों में स्वामी ।
बस यही श्रेष्ठ है निजपरमार्थ सुनामी ॥
मैं चैत्यवृक्ष के जिन बिम्बों को वन्दूँ ।
फिर निजस्वभाव को श्रद्धा से अभिनन्दूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थउपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह अत्र अवतर अवतर (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थउपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थउपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

वीरछन्द

आतम लक्ष्य ज्ञान है लक्षण ज्ञान प्रसिद्धि निजात्म प्रसिद्धि ।
ज्ञान क्रिया से परिणत आत्मा ही पाता है पूरी सिद्धि ॥

आत्मज्ञान गंगा जल पावन पीने को निज घर आऊँ।
चैत्यवृक्ष जिन पूजन करके जन्म - जरादिक विनशाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थउपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मा परिणामी होने से साधकपना प्रगट होता।
सिद्धपना भी प्रकटित होता जब परिणाम विमल होता॥
आत्मज्ञान चन्दन का पावन तिलक लगाऊँगा मैं आज।
चैत्यवृक्ष जिनपूजन करके मोक्षमार्ग पाऊँ जिनराज॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थउपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्यो संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

नय-निक्षेप सभी क्षत-विक्षत यदि हों अनेकान्त से शून्य।
पुण्योदय से प्राप्त सभी पद क्षणवर्त्ती है, सुख से शून्य॥
आत्मोत्पन्न ज्ञान के उत्तम अक्षत आप कृपा पाऊँ।
चैत्यवृक्ष जिनपूजन करके निज अक्षयपद प्रगटाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थउपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मोक्षार्थी ही मोक्षमार्ग में अपने को ले जाता है।
दर्शन - ज्ञान - चरित्रमयी हो शुद्ध मोक्षपद पाता है॥
आत्मज्ञान उपवन के पुष्पों की निर्मल सुगंध पाऊँ।
चैत्यवृक्ष जिनपूजन करके महाशील पति बन जाऊँ॥

ॐ ह्री श्री समवशरणस्थ उपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निजानन्द में तृप्त रहूँ नित पञ्चेन्द्रिय अभिलाषा त्याग।
परम अतीन्द्रिय शीतल रस में किञ्चित् नहीं राग की आग॥
चिदानन्द भोगी जिनवर की पूजन कर नित हर्षाऊँ।
चैत्यवृक्ष जिनपूजन कर हे प्रभु मैं परम तृप्ति पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य उपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बन्धस्वरूप जानकर जो उसमें ही हो जाता सन्तुष्ट।
कर्म-बन्ध से प्रथक मोक्ष का ज्ञान न कर पाता संपुष्ट॥
संशयादि एकान्त नाशहित ज्ञानदीप जोऊँ इस बार।
चैत्यवृक्ष जिनपूजन करके भ्रम अज्ञान करूँ संहार॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थउपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

बन्धन की चिन्ता करने से बन्धन नहीं छूटता है।
बन्ध छेदने से ही ध्रुवपद मिलता बन्ध टूटता है॥
आत्मोत्पन्न धर्म की पावन धूप सुगंध मिली है आज।
चैत्यवृक्ष जिन पूजन करके होऊँ निर्मल हे जिनराज॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थउपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बन्ध छेदने का कारण तो एकमात्र है प्रज्ञा शस्त्र।
आत्मा का प्रज्ञा के द्वारा ग्रहण यही जिन आग्नेयास्त्र॥
आत्मज्ञान के मंगल तरु से महा मोक्षफल पाऊँ देव।
चैत्यवृक्ष जिनपूजन करके पाऊँ मुक्ति सौख्य स्वयमेव॥

ॐ ह्री श्री समवशरणस्थउपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मा के अतिरिक्त अन्य भावों का त्याग यही पुरुषार्थ।
जो परभाव ग्रहण करता है वही घात करता परमार्थ॥
आत्म प्रदेशों में अनंत गुण उनका अर्घ्य सजाऊँ नाथ।
चैत्यवृक्ष जिनपूजन करके पद-अनर्घ्य पा बनूँ सनाथ॥

ॐ ह्री श्री समवशरणस्थउपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनबिम्बेम्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

सोरठा

उपवन भूमि सु पूर्व वन अशोक है चैत्य तरु।
पृथ्वीकायिक एक, चहुँ दिशि इक इक बिम्ब जिन॥

नीचे चार दिशा मानस्तम्भ सु चार हैं।
इक इक में हैं चार जिनप्रतिमा पूजन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्यपूर्वदिशायाम् उपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दक्षिण उपवन भूमि सप्तच्छद वन चैत्य तरु।
पृथ्वीकायिक एक चहुँदिशि इक इक बिम्ब जिन॥
नीचे चार दिशा मानस्तम्भ सु चार हैं।
इक इक में हैं चार जिनप्रतिमा पूजन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्यदक्षिणदिशायाम् उपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम उपवन भूमि चैत्यवृक्ष चम्पक सुवन।
पृथ्वीकायिक एक चहुँदिशि इक इक बिम्ब जिन॥
नीचे चारों ओर मानस्तम्भ सु चार हैं।
इक इक में हैं चार जिनप्रतिमा पूजन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्यपश्चिमदिशायाम् उपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर उपवन भूमि चैत्यवृक्ष है आम्रवन।
पृथ्वी कायिक एक चहुँदिशि इक इक बिम्ब जिन॥
तरु नीचे दिशि चार मानस्तम्भ सु चार हैं।
इक इक में हैं चार जिनप्रतिमा पूजन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्यउत्तरदिशायाम् उपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

रोला

उपवन भूमि सुपूरव दक्षिण पश्चिम उत्तर।
वन अशोक सप्तच्छद चम्पक आम्र मनोहर॥

पृथ्वीकायिक चैत्यवृक्ष इक में इक जानों।
चार चार हैं मानस्तम्भ सु सोलह मानों॥

चैत्यवृक्ष के सोलह मानस्तम्भ जु चौंसठ।
अस्सी प्रतिमा पूजूँ भाव सहित तज भवहठ॥

आत्मज्ञान का चमत्कार अन्तर में जागे।
भव अटवी का अंधकार प्रभु! क्षण में भागे॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्यउपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्य-पदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

दोहा

चैत्यवृक्ष के बिम्ब सब पूजूँ हे तीर्थेश।
पंच महाव्रत धारकर पाऊँ जिन मुनि वेश॥

मरहठा माधवी

कामभोग बन्धन की कथनी सुनी अनंतों बार रे।
किन्तु निजातम की अनुभूति हुई न एक भी बार रे॥

पर प्रपंच में उलझ उलझ कर प्राण गवाये हैं सदा।
भावमरण प्रतिसमय किया है रे अनादि से सर्वदा॥

मोह क्षोभ से पीड़ित होकर राग द्वेष दुःख से लदा।
पुण्य-पाप भावों से साता और असाता भार रे॥ काम.॥

निजस्वरूप से विमुख हुआ मैं पूर्ण दुःखी होता रहा।
निज परिचय के बिना मूढ़बन पर घर में खोता रहा॥

निज स्वभाव साधन के बिन मैं निजदर्शन खोता रहा।
नहीं निर्जरा संवर जाना ना निश्चय व्यवहार रे॥ काम.॥

समयसार में कुन्दकुन्द ने निजवैभव दर्शा दिया।
पूर्ण शक्ति से अनुभव करके समता रस बरसा दिया॥

मैं ही ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता शुद्धातम रस परसा दिया।
शुद्ध भाव के मोती शोभित अनुपम वन्दनवार रे ॥ काम. ॥

कुन्दकुन्द की वाणी सुन मन हर्षित पुलकित हो गया।
निजस्वरूप के दर्शन पाये पर विभाव क्षय हो गया ॥

जगा भेद-विज्ञान आज यह दर्शमोह लय हो गया।
सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है करके तत्त्वविचार रे ॥ काम. ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्यउपवनभूमिस्थितचैत्यवृक्षसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्य पदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

उपवन भूमि सु चैत्य वृक्ष जिन आयतन।
पूजन की है तजकर सर्व अनायतन ॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिन पूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

* * *

भजन

आयो आयो रे हमारो बड़ो भाग, कि हम आए पूजन को।
पूजन को प्रभु दर्शन को, पावन प्रभु-पद पर्शन को ॥ टेक ॥

जिनवर की अन्तर्मुख मुद्रा आतम दर्श कराती।
मोह महामल प्रक्षालन कर शुद्ध स्वरूप दिखाती ॥ १ ॥

भव्य अकृत्रिम चैत्यालय की जग में शोभा भारी।
मंगल ध्वज ले सुरपति आए शोभा जिसकी न्यारी ॥ २ ॥

अनेकान्तमय वस्तु समझ जिन शासन ध्वज लहरावें।
स्याद्वाद शैली से प्रभुवर मुक्ति मार्ग समझावें ॥ ३ ॥

9

ध्वजभूमि पूजन

स्थापना

राधिका

है उपवन भू के बाद वेदिका तीजी।
यक्षों से रक्षित वलयाकार बनी जी॥
है विजयद्वार सुन्दर गोपुर मनहारी।
फिर ध्वजा भूमि है तीन लोक से न्यारी॥

ध्वज ध्वजा दण्ड पर लहराते हैं मनहर।
इक शत अरु आठ महाध्वज हैं अति सुन्दर॥
आधीन सुलघुध्वज इक शत वसु इक संग हैं।
ये सर्व ध्वजायें भव जय हित सक्षम हैं॥

हैं विविध चिन्ह के ये ध्वज पृथक-पृथक ही।
नभ मण्डल में लहराते मनमोहक ही॥
माला अरु सिंह गरुड गज अंशुक लक्षण।
है वृषभ मयूर कमल अरु हंस विलक्षण॥

चकवा-चकवी युत दस प्रकार के ये ध्वज।
हैं चार सहस्र तीन सौ बीस महाध्वज॥
लघु ध्वज लहराते जिन चरणों में हो नत।
है भव्य अभव्य सभी प्राणी मन मोहित॥

ये चार लाख छयासठ सहस्र पांच शत।
अरु साठ यही देवोपम निर्मित युगपत॥
यह पंचम ध्वजा भूमि बहु गौरवशाली।
है समवशरण रचना अति वैभवशाली॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितध्वजभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितध्वजभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितध्वजभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

माधव मालती

भावनामय ज्ञानध्वज को हम चढ़ायेंगे अभी ही।
मुक्ति के पथ पर चरण अब हम बढ़ायेंगे अभी ही॥
सजग प्रहरी बनेंगे निज आत्मा के सावधान।
नीड़ अपना प्राप्त करके पायेंगे शिवसुख महान॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितध्वजभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह के आतंकवादी घात से बच कर रहेंगे।
कलुष कंटक जाल के संताप से बच कर रहेंगे॥
आत्म तत्त्व महान चन्दन बात यह सच कर रहेंगे।
ध्यान धर कर शाश्वत अपना भवन रच कर रहेंगे॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितध्वजभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रमादों की अग्नि उपशम तीर से हम बुझायेंगे।
विगत भूलें क्षतमयी अब कभी ना दोहरायेंगे॥
पूर्ण संयम दशा पाने यही अवसर अब मिला है।
यह न चूकेंगे कभी भी आज हृदयांबुज खिला है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितध्वजभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

धार अमृत की बहायें विषमयी रस नष्ट करके।
घोर उच्छृंखल विकारी भाव पूरे नष्ट करके॥

कषायों की चौकड़ी को जलायेंगे ध्यान द्वारा।
घातिया चारों मिटा देंगे अभी हम ज्ञान द्वारा॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितध्वजभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

कलुषता जननी दुःखों की इसे पूरी छोड़ देंगे।
बाह्य के परिवेश निज परिवेश से हम तोड़ देंगे॥
भेष निर्ग्रन्थेश मुनि का अनाहारी पा रहेंगे।
देखना हम एक दिन जिन आप्त बन सुख सरि बहेंगे॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितध्वजभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आप्त पद्धति ज्ञानमय निजप्रेरणा का सूत्र जाना।
परम अद्भुत आध्यात्मिक ज्ञान दीप स्वसूत्र माना॥
इसलिये अब भय नहीं है अभय हैं हम ध्रुव त्रिकाली।
विश्व में सर्वोत्कृष्ट स्वभावना पायी निराली॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितध्वजभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मविश्लेषण किया है तो क्रियान्वित भी करेंगे।
अधोगामी दिशा छोड़ी ऊर्ध्वगामी पद वरेंगे॥
सर्प को रस्सी समझकर पकड़ हम मरते रहे हैं।
रज्जु को विषधर समझकर, त्याग, दुःख सहते रहे हैं॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितध्वजभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अब न भव आसक्ति उर में, अनासक्ति हृदय जगी है।
किया पश्चाताप पापों का अतः दुर्मति भगी है॥
पुण्य से सम्बन्ध हमने तोड़ डाले हैं सभी ही।
शुद्धभाव महान हमने प्रभो पाये हैं अभी ही॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितध्वजभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वयं में लयबद्ध होकर गीत गायेंगे स्वयं के।
साम्यभावी महत्वाकांक्षा सजायेंगे स्वश्रम से॥
राग के दुष्प्रदूषण को नष्ट हमने कर दिया है।
मोह का पर्वत हृदय से भ्रष्ट हमने कर दिया है॥
पा लिया है लक्ष्य हमने स्वपद अनुभव शक्ति से अब।
ओत-प्रोत हुये अतीन्द्रिय रसमयी निज भक्ति से अब॥
रोक पायेंगे न कोई मुक्ति पथ से एक क्षण भी।
हृदय में बिल्कुल नहीं है राग का अब एक कण भी॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितध्वजभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

वीरछन्द

पूर्व दिशा की समवशरण ध्वजभूमि देख हर्षित है मन।
विनियत होकर अर्घ्य चढ़ाऊँ श्री जिनवर को करूँ नमन॥
ज्ञान- गगन की अनुपम महिमा से मैं ओत- प्रोत हुआ।
त्रैकालिक ध्रुव का आश्रय ले पूर्ण सौख्य का स्रोत हुआ॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य ध्वजभूम्यां पूर्वदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दक्षिण दिशि की समवशरण ध्वजभूमि देख पुलकित है मन।
हर्ष पूर्वक अर्घ्य चढ़ाऊँ पाऊँ प्रभु सम्यक्दर्शन॥
नाथ आपकी दिव्यध्वनि सुन हुआ देह में अति रोमाँच।
अब न सतायेगी हे स्वामी मुझको कभी मोह की ऑच॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य ध्वजभूम्यां दक्षिणदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम दिशि की समवशरण ध्वजभूमि निरख हर्षित है मन।
अर्घ्य चढ़ाऊँ श्री जिनेन्द्र को निज वीणा झंकृत झन-झन॥
गुण अनंतपति के दर्शन कर गुण अनंत निज दर्शाये।
आज मुझे विश्वास हो गया मोक्ष प्राप्ति के दिन आये॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य ध्वजभूम्यां पश्चिमदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर दिशि की समवशरण ध्वजभूमि निरख उत्साहित हो।
तीर्थंकर को अर्घ्य चढ़ाऊँ धन्य धन्य हे जिनपति हो॥
तुम चरणों में आकर रवि-शशि तेज मंद हो जाता है।
जो भी चरणों में आता है वही मुक्तिपद पाता है॥ ४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य ध्वजभूम्यां उत्तरदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

समवशरण ध्वजभूमि पाँचवीं ध्वजा पंक्तियों से शोभित।
दश प्रकार के चिन्ह युक्त हैं लघु अरु महाध्वजा मोहित॥
महा-अर्घ्य मैं करूँ समर्पित यशोध्वजापति प्रभु को आज।
ज्ञानध्वजा पाऊँ हे स्वामी! पाऊँ पावन निजपद राज॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य ध्वजभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

धर्मध्वजा धारी प्रभो तीर्थंकर भगवान।
ज्ञान ध्वजा दो नाथ अब पाऊँ पद निर्वाण॥

मानव

जिन दर्शन की महिमा से प्रभु सम्यग्दर्शन पाया।
पुरुषार्थ फला है मेरा आनन्द अतीन्द्रिय आया॥

समकित की शरद पूर्णिमा शीतलता सरसाती है।
चाँदनी ज्ञान की नभ से ज्ञानामृत बरसाती है॥
मिथ्यात्व महातम धूमिल घन से नभ रीत गया है।
अन्तर्द्वन्दों से अब तो ज्ञानी मन जीत गया है॥
अभिनव सौन्दर्य सुमति का मेरे मन को भाया है।
श्रृंगार विमल समता का इन ऑखों में छाया है॥
जप तप व्रत गुण नक्षत्रों से उर अम्बर निज चमके।
चैतन्य चन्द्र पूनम का नव प्रतिक्षण प्रतिपल दमके॥
शीतल बयार समरस की लाती प्रफुल्लता मन में।
पुद्गल से ममता त्यागी अब है ममत्व नहिं तन में॥
वैराग्य भावना उर में शिवमय भैरवी बजाती।
साधना मोक्ष की निज में ध्रुव रागे श्री सजाती॥
समकित की मंजुल पूनम अन्तर्नभ में छायी है।
जो मोक्षमार्ग की किरणें जागृत करती आयी हैं॥
प्राञ्जल्य भाव हैं मेरे पूजा है तुम्हें हृदय से।
जुड़ गया आज मैं स्वामी ध्रुवधामी मोक्ष निलय से॥
यह आस्रव सांपरायिक प्रभु निकट न आने पाये।
ईर्यापथ आस्रव आये तो पल भर ठहर न पाये॥
निज परमपारिणामिक की महिमा जागे अन्तर में।
संगीत ज्ञान का गूँजे प्रतिसमय स्व अभ्यंतर में॥
मेरी परिणति ने जोगन बन पावन जोग लिया है।
चेतन के भीतर आकर उसका मन मोह लिया है॥

अब कभी नहीं बहकूँगा यह दृढ़ निश्चय है मेरा।
मैं शिवपुर पथिक निराला जिन प्रभु का निश्चित चेरा ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितध्वजभूमिभूषित-तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

समवशरण ध्वज भूमि महा सुखदाय है।
महाध्वजा लघुध्वजा संग लहराय है ॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

रोम रोम पुलकित हो जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय।
ज्ञानानन्द कलियाँ खिल जायँ, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥
जिन-मन्दिर में श्री जिनराज, तन-मन्दिर में चेतनराज।
तन-चेतन को भिन्न पिछान, जीवन सफल हुआ है आज ॥ टेक ॥
वीतराग सर्वज्ञ-देव प्रभु, आए हम तेरे दरबार।
तेरे दर्शन से निज दर्शन, पाकर होवें भव से पार ॥
मोह-महातम तुरत विलाय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥ १ ॥
दर्शन-ज्ञान अनन्त प्रभु का, बल अनन्त आनन्द अपार।
गुण अनन्त से शोभित हैं प्रभु, महिमा जग में अपरम्पार ॥
शुद्धातम की महिमा आय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥२ ॥
लोकालोक झलकते जिसमें, ऐसा प्रभु का केवलज्ञान।
लीन रहें निज शुद्धातम में, प्रतिक्षण हो आनन्द महान ॥
ज्ञायक पर दृष्टि जम जाय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥३ ॥
प्रभु की अन्तर्मुख-मुद्रा लखि, परिणति में प्रगटे समभाव।
क्षण-भर में हों प्राप्त विलय को, पर-आश्रित सम्पूर्ण विभाव ॥
रत्नत्रय-निधियाँ प्रगटाय, जब जिनवर के दर्शन पाय ॥४ ॥

10

कल्पवृक्ष भूमि पूजन

स्थापना

राधिका

ध्वज भू आगे है तृतिय कोट चाँदी का।
है धूलिसाल सम अति सुन्दर अति नीका॥
फिर वीथी तोरण द्वार युक्त गोपुर है।
है विजय द्वार छविमान भूमि सुन्दर है॥

ये कल्पवृक्ष युत भूमि छठी है जानो।
चारों दिशि में सिद्धार्थ वृक्ष हैं मानो॥
हैं एक एक सिद्धार्थ वृक्ष जिन प्रतिमा।
देखो तो जिनवर समवशरण की महिमा॥

हैं दस प्रकार के कल्पवृक्ष हितकारी।
पानाँग और तूयाँग नयन सुखकारी॥
हैं भूषणाँग वस्त्रांग महान मनोहर।
हैं भोजनाँग अरु आलयाँग बहु सुन्दर॥

दीपाँग और हैं भाजनाँग गरिमामय।
मालाँग तथा तेजाँग नाम के गुणमय॥
जो चाहो इनसे मिल जाता है तत्क्षण।
है भोग भूमि सम इनके सारे लक्षण॥

है कल्पवृक्ष भू का अति सुन्दर कण कण।
जिसकी शोभा लख हर्षित है सबका मन॥
सिद्धार्थ वृक्ष पर शोभित है जिन प्रतिमा।
जिन समवशरण आता, गाता जिन महिमा॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितकल्पवृक्षभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितकल्पवृक्षभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितकल्पवृक्षभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

ताटंक

प्रभु पाँचों समवाय प्राप्त कर निर्मल जल की धार करूँ।
जन्म - मृत्यु भवरोग नाश हित शुद्धातम सत्कार करूँ॥
निज स्वभाव समवाय लखूँ मैं प्रथम तत्त्व का ज्ञान करूँ।
कल्पवृक्ष जिनपूजन करके आत्म तत्त्व का भान करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितकल्पवृक्षभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु पाँचों समवाय प्राप्त कर शीतल चन्दन चरण धरूँ।
भवाताप की पीड़ा नाशूँ शुद्धातम को ग्रहण करूँ॥
निज सन्मुख पुरुषार्थ जगाऊँ दूजा यह समवाय वरूँ।
कल्पवृक्ष जिनपूजन करके मुक्ति मार्ग शिवदाय वरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितकल्पवृक्षभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु पाँचों समवाय प्राप्त कर शुचिमय अक्षत ले आऊँ।
अक्षय पद की गरिमा पाकर भव समुद्र यह तर जाऊँ॥
काल लब्धि आई है मेरी जाग उठा अब निज हित काज।
कल्पवृक्ष जिनपूजन करके निरखूँगा मैं निज पद राज॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितकल्पवृक्षभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु पाँचों समवाय प्राप्त कर जिन कल्पद्रुम पुष्प चुनूँ।
कामबाण की पीड़ा नाशूँ आस्रव जाल न और बुनूँ॥
उज्जवल हो भवितव्य नाथ समवाय चतुर्थम पाऊँगा।
कल्पवृक्ष जिनपूजन करके विषयाशा विनशाऊँगा॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितकल्पवृक्षभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय कामबाण - विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामिति स्वाहा।

प्रभु पाँचों समवाय प्राप्त कर अनुभव रस नैवेद्य धरूँ।
क्षुधा व्याधि सम्पूर्ण नाश कर चिर अतृप्ति का रोग हरूँ॥
हो समवाय निमित्त सहज पाँचवाँ सदा ही निज अनुकूल।
कल्पवृक्ष जिनपूजन करके पाऊँ प्रभु भव सागर कूल॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितकल्पवृक्षभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय क्षुधारोग - विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु पाँचों समवाय प्राप्त कर ज्ञान ज्योति का लूँ आधार।
दर्शन अरु चारित्रमोह का कर डालूँ अब तो संहार॥
जगी ज्ञान की पावन ज्योति मोह विलीन हुआ तत्काल।
कल्पवृक्ष जिनपूजन करके परखूँ निज बल महा विशाल॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितकल्पवृक्षभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय महामोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु पाँचों समवाय प्राप्त कर धर्म धूप की सुरभि मिले।
अष्टकर्म सम्पूर्ण क्षीण हो ज्ञानोदधि उर में उछले॥
ज्ञानावरण दर्शनावरणी आदिक अरि रज त्वरित उड़े।
कल्पवृक्ष जिनपूजन करके परिणति निज से सहज जुड़े॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितकल्पवृक्षभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु पाँचों समवाय प्राप्त कर आत्मोत्पन्न सुफल पाऊँ।
शुद्ध मोक्ष फल प्राप्त करूँ मैं सिद्ध स्वपद निज विकसाऊँ॥

इस संसार मार्ग के फल खा चारों गति में भ्रमा प्रभो।
कल्पवृक्ष जिनपूजन करके निज स्वभाव मैं रमूँ विभो॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितकल्पवृक्षभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु पाँचों समवाय प्राप्त कर धर्म सुध्यान अर्घ्य लाऊँ।
पद अनर्घ्य प्रगटाऊँ अपना फिर न लौट भव में आऊँ॥
अपद छोड़कर स्वपद सजाऊँ भव विपदाएँ करूँ विनाश।
कल्पवृक्ष जिनपूजन करके पाऊँ उज्ज्वल ज्ञान प्रकाश॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितकल्पवृक्षभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

वीरछन्द

कल्पवृक्ष भू पूर्व दिशा से पूजूँ समवशरण अधिपति।
अर्घ्य चढ़ाऊँ जिन महिमा से हे प्रभु पाऊँ पंचमगति॥
चारों गति का भ्रमण विनाशूँ आत्मज्ञान- रवि के बल से।
पुण्य-पाप शुभ-अशुभ आस्रव क्षय कर दूँ स्वभाव जल से॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य कल्पवृक्षभूम्यांपूर्वदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कल्पवृक्ष दक्षिण दिशि भू से पूजूँ स्वामी समवशरण।
दर्शनज्ञानमयी भावों का अर्घ्य चढ़ाऊँ हे भगवन॥
तन-ज्वर हरने वाले शीतल चंदन से मुझको क्या काम।
शुद्ध भाव चंदन अब पाया, प्राप्त करूँगा निज ध्रुव धाम॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य कल्पवृक्षभूम्यां दक्षिणदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कल्पवृक्ष भू पश्चिम दिशि से पूजूँ जिनवर समवशरण।
अष्टद्रव्य युत अर्घ्य चढ़ाऊँ निजस्वरूप का करूँ वरण॥

चक्रवर्ति-इन्द्रादिक पद की आकाँक्षा से हुआ विहीन।
यह संसार क्लेश हरने को हो जाऊँ मैं ज्ञान प्रवीन ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य कल्पवृक्ष भूम्यां पश्चिम दिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तरदिशि में भूमि कल्पतरु से पूजूँ मैं जिनतीर्थेश।
पंच-महाव्रत धारण करलूँ बनूँ नाथ मैं निर्ग्रन्थेश ॥
ग्यारह अंग पूर्व नौ का भी ज्ञान न मोक्षमार्ग का हेतु।
वसु प्रवचनमातृका युक्त निज आत्म-ज्ञान ही भवदधिसेतु ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य कल्पवृक्षभूम्यां उत्तर दिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

कल्पवृक्ष की भूमि मनोहर सुरबालायें गाती गान।
इन्द्र सुर-असुर सब आते हैं गीत नृत्य होते छविमान ॥
महा अर्घ्य मैं अर्पण करके गाऊँ जिनवर जयजयकार।
भूमि कल्पतरु भूषित समवशरण की शोभा अपरम्पार ॥
निज स्वभाव है महाकल्पतरु जिसमें भरे अनन्त निधान।
मंगलमय अरु मंगलकारी प्रगटे वीतराग- विज्ञान ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य कल्पवृक्षभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

धन्य- धन्य जिनदेव तुम, कहे पाँच समवाय।
होता है उत्पन्न जब, प्रति पदार्थ में कार्य ॥
जो जाने समवाय को, करे सत्य पुरुषार्थ।
पर- सन्मुखता का सभी, श्रम होता है व्यर्थ ॥

वीरछन्द

गुण अनन्तमय द्रव्य सदा है, जो हैं उसके सहज स्वभाव।
जैसे गुण होते हैं वैसे, कार्यों का हो प्रादुर्भाव॥

जैसे तिल में तेल निकलता, नहीं निकलता है रज से।
चेतन की परिणति चेतनमय, जड़मय परिणति हो जड़ से॥

सब द्रव्यों में वीर्य शक्ति से, होता है प्रतिपल पुरुषार्थ।
अपनी परिणति में द्रवता है, उसमें तन्मय होकर अर्थ॥

निज स्वभाव सन्मुख होना ही, साध्य सिद्धि का सत् पुरुषार्थ।
पर-आश्रित परिणति में होता, बंध भाव दुखमय जो व्यर्थ॥

अपने अपने निश्चित क्षण में, प्रतिपल होती है पर्याय।
है त्रिकाल रहती स्वकाल में, कहते परम पूज्य जिनराय॥

है पदार्थ यद्यपि परिणमता, इसीलिए कर्त्ता होता।
किन्तु कभी भी पर्यायों का, क्रम विच्छेद नहीं होता॥

उभय हेतु से होने वाला, कार्य कहा जिसका लक्षण।
वह भवितव्य अलंघ्य शक्तिमय, ज्ञानी अनुभवते प्रतिक्षण॥

जैसा देखा सर्वज्ञों ने, वैसा होता है भवितव्य।
अनहोनी होती न कभी भी, जो समझे वह निश्चित भव्य॥

प्रति पदार्थ में है पुरुषार्थ, स्वभाव काललब्धि अरु कार्य।
कार्योत्पत्ति समय में जो, अनुकूल वही निमित्त स्वीकार॥

उपादान की परिणति जैसी, वैसा होता है उपचार।
सहज निमित्तरु नैमित्तिक, सम्बन्ध कहा जाता बहुबार॥

सोरठा

प्रथम चार समवाय, उपादान की शक्ति हैं।
अरु पञ्चम समवाय, है निमित्त परवस्तु ही॥

जानूँ वस्तु स्वभाव, पद अनर्घ्य की प्राप्ति हित ।
पाऊँ ज्ञायक भाव, करूँ समर्पित अर्घ्य यह ॥

ॐ ह्री श्री समवशरणस्थितकल्पवृक्षभूमिविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

चान्द्रायण

कल्पवृक्ष भू समवशरण मंगलमयी ।
जो चाहो देते हैं फल इच्छामयी ॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो ।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

* * *

भजन

तुम्हारे दर्श बिन स्वामी मुझे नहिं चैन पड़ती है ।
छवि वैराग तेरी सामने आखों के फिरती है ॥ टेक ॥

निरा भूषण विगत दूषण, परम आसन मधुर भाषण ।
नजर पैनों की आशा की उनी पर से गुजरती है ॥ १ ॥

नहीं कर्मों का डर हमको, कि जब लग ध्यान चरणन में ।
तेरे दर्शन से सुनते हैं, करम रेखा बदलती है ॥ २ ॥

मिले गर स्वर्ग की सम्पति अचम्भा कौन सा इसमें ।
तुम्हें जो नयन भर देखे गति दुरगति की टलती है ॥ ३ ॥

हजारों मूर्तियां हमने बहुत सी अन्य मत देखी ।
शान्ति मूरत तुम्हारी सी नहीं नजरों में चढ़ती है ॥ ४ ॥

जगत सिरताज हो जिनराज सेवक को दरश दीजे ।
तुम्हारा क्या बिगड़ता है मेरी बिगड़ी सुधरती है ॥ ५ ॥

11

सिद्धार्थ वृक्ष पूजन

स्थापना

राधिका

भू कल्पवृक्ष सिद्धार्थ वृक्ष से शोभित।
इन वृक्षों पर जिन प्रतिमा लख जग मोहित॥
है मेरु भूप तरु आग्नेय दिशि शोभित।
मंदार सुतरु नैऋत्य दिशा में सुस्थित॥
संतानक भूप तरु वायव्य दिशा में।
हैं मनहर पारिजात ईशान दिशा में॥
है मानस्तम्भ मूल इक इक तरु जानो।
तीर्थंकर तन से बारह गुणा प्रमाणों॥
तरु जिन प्रतिमा पूजन कर ताप हरूँ मैं।
जिन समवशरण के मध्य विकार हरूँ मैं॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजित जिनप्रतिमा समूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजित जिनप्रतिमा समूह ! अत्र तिष्ठ: तिष्ठ: ठ: ठ: (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजित जिनप्रतिमा समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

चान्द्रायण

रत्नत्रय ही मोक्षमार्ग है जानिये।
पहले सम्यकदर्शन जल उर आनिये॥
समकित के बिन सम्यक्ज्ञान न प्राप्त हो।
समकित बिन सम्यक्चारित्र न व्याप्त हो॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजित जिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

रीति अलौकिक जिन मुनियों की है सदा।
लौकिक रीति न मिलती है उनसे कदा॥
मुनियों का आचार विलक्षण जानिये।
उसमें नहिं दुर्गंध विभावी मानिये॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजित जिनबिम्बेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान महान है।
अरु सम्यक्चारित्र पवित्र प्रधान है॥
अक्षय अक्षत यही मोक्ष का मार्ग है।
शेष सभी संसार मार्ग उन्मार्ग है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजित जिनबिम्बेभ्यो अक्षतपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान हो।
सप्त तत्त्व पुष्पों का पूरा ज्ञान हो॥
जीवादिक षट द्रव्य सभी को जान लूँ।
पुण्य-पाप युत नौ पदार्थ पहचान लूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजित जिनबिम्बेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तन चेतन को भिन्न सदा जो जानता।
निज को निज पर को पर ही पहचानता॥
ज्ञानी कर्म उदय को सम हो भोगता।
है आनन्द अतीन्द्रिय चरु का भोक्ता॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजित जिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देहाश्रित परिणति को जो जड़ जानता।
ज्ञान ज्योति से निजपरिणति निज मानता॥

आत्म लीनता ही चारित्र महान है।
इसके ही बल से मिलता निर्वाण है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजित जिनबिम्बेभ्यो महामोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुक्ल ध्यान की अग्नि सदैव जलाऊँगा।
अष्ट कर्म का ईंधन सर्व नशाऊँगा॥
लोक संपदा की न दुखमयी धूप है।
ज्ञान सिन्धु मय निज चैतन्य स्वरूप है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजितजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो एकान्तवाद से दूषित धर्म हैं।
उसका राग नहीं जो सर्व अधर्म हैं॥
रत्नत्रय निष्कम्प सुफल है ज्ञान का।
भव बाधा से रहित स्व पथ निर्वाण का॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजितजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

विषय भोग अभिलाषादिक से हो विहीन।
जग अनित्य है श्रद्धा यह उर में प्रवीण॥
अब रत्नत्रय से निज अन्तर को सजा।
मुक्ति मार्ग पर बढ़ता जाऊँगा बजा॥

सिद्ध अर्थ सम्पूर्ण आज प्रभु हो गया।
चेतन में ही चेतन भासित हो गया॥
पद अनर्घ्य मेरा अलोक के पास है।
इसीलिये होगा लोकाग्र निवास है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजितजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

सोरठा

दिशि आग्नेय प्रसिद्ध मेरु भूप तरु वृक्ष हैं।
सिद्ध बिम्ब हैं चार अरु मानस्तम्भ चार हैं॥
महिमा अपरम्पार है सिद्धार्थ सुवृक्ष की।
वन्दूँ मन-वच-काय परम शांति पाऊँ प्रभो॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितआग्नेयदिशिसिद्धार्थवृक्षविराजित जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिशि नैऋत्य प्रसिद्ध शुभ मंदार सुभूप तरु।
सिद्ध बिम्ब हैं चार, मानस्तम्भ भी चार हैं॥
महिमा अपरम्पार है सिद्धार्थ सुवृक्ष की।
वन्दूँ उर हरषाय भावों से पूजा करूँ॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितनैऋत्यदिशिसिद्धार्थवृक्षविराजित जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तरु संतानक भूप दिशि वायव्य सुवृक्ष हैं।
सिद्ध बिम्ब हैं चार मानस्तम्भ सु चार हैं॥
गरिमा श्रेष्ठ अपार है सिद्धार्थ सुवृक्ष की।
नमहुँ त्रियोग संभार, प्रासुक द्रव्य चढ़ाऊँ प्रभु॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितवायव्यदिशिसिद्धार्थवृक्षविराजित जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिशि ईशान महान पारिजात तरु भूप हैं।
सिद्ध बिम्ब हैं चार मानस्तम्भ सु चार हैं॥
गरिमामयी प्रसिद्ध है सिद्धार्थ सुवृक्ष की।
ले उर निर्मल भाव विनय सहित पूजा करूँ॥ ४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितईशानदिशिसिद्धार्थवृक्षविराजित जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

सोरठा

आग्नेय वायव्य दिशि ईशान नैऋत्य में।
चार वृक्ष सिद्धार्थ सिद्ध बिम्ब सोलह लखो॥
सोलह मानस्तम्भ चौसठ जिन प्रतिमा नमूँ।
निज दर्शन के हेतु नित इनकी पूजन करूँ॥
पदवी प्राप्ति अनर्घ्य मेरे वश की बात है।
लक्ष्य त्रिकाली ध्रौव्य अत: मुझे विश्वास है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजितजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सोरठा

गाऊँ मंगल गान, समवशरण के मध्य प्रभु।
सिद्ध करूँ पुरुषार्थ तरु सिद्धार्थ सु पूजकर॥

वीरछन्द

निज स्वरूप में चरण रमण ही है सम्यक चारित्र सुधर्म।
निजस्वरूप में हो प्रवृत्ति तो वस्तु स्वभाव धर्म है मर्म॥

सर्व यथावस्थित निजात्म गुण सकल विषमता रहित प्रधान।
मोह क्षोभ के अभाव पूर्वक निर्विकार परिणाम महान॥

शुद्ध आत्मा में अपनापन है सम्यक्त्व श्रेष्ठ बलवान।
इससे जो विपरीत भाव है वही मोह मिथ्यात्व निधान॥

निर्विकार निश्चल परिणति के जो विरुद्ध हैं वो दुखखान।
यही क्षोभ है मोह संग जो द्वादश में होता अवसान॥

है सम्यक्-चारित्र आत्ममय जो अनंतगुण से परिपूर्ण।
हो प्रकाश चैतन्य पुँज का परम तेजमय सुख आपूर्ण॥

ज्ञान-ज्ञेय सर्वथा भिन्न हैं, इनमें कुछ संबंध नहीं।
ज्ञायक तो केवल ज्ञायक है अतः कर्म अनुबंध नहीं॥

परिणति साम्यभावमय हो तो होता है सम्यक् चारित्र।
रत्नत्रय ध्वज लहराता है अंतरंग में परम पवित्र॥

मुक्ति पंथ में तो ज्ञानी का इतना ही निर्णय पर्याप्त।
इस निर्णय के द्वारा एक दिवस शिव सुख होता उर व्याप्त॥

चारित्तं खलु धम्मो का तात्पर्य पूर्ण निज में विश्राम।
मोह क्षोभ से रहित साम्यभावों का आलय निज ध्रुवधाम॥

लक्ष्य त्रिकाली का हो तो रत्नत्रय होता है बलवान।
निज पुरुषार्थ शक्ति के द्वारा चेतन पा लेता निर्वाण॥

ॐ ह्री श्री समवशरणमध्यकल्पवृक्षभूमिस्थितसिद्धार्थवृक्षविराजितजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यं पदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

पूजें प्रभु! सिद्धार्थ वृक्ष बहु भाव से।
निर्मलता पाऊँगा शुद्ध स्वभाव से॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

***

12

भवनभूमि पूजन

स्थापना

रोला

कल्पभूमि पश्चात् मनोहर चौथी वेदी।
महिमामय वीथी चारों दिशि में दुख छेदी॥
सप्तम भवन भूमि भव्यों को नित्य दृश्य है।
गोपुर विजयद्वार सुन्दर अति भव्य दृश्य है॥

चारों दिशि में हैं नौ-नौ स्तूप मनोहर।
छत्तीसों स्तूपों में हैं बिम्ब जिनेश्वर॥
भव्य कूट हैं यहाँ चमत्कारी शुभ पावन।
इससे आगे नहीं अभव्यों का है वर्तन॥

इसी भूमि पर भव्य महोदय मण्डप उत्तम।
श्री केवली यहाँ विराजित निज में सक्षम॥
दाँयी ओर श्री श्रुत केवलि करते भाषण।
आक्षेपणी कथाएँ आदिक कहते प्रतिक्षण॥

फिर लघु गंध कुटी बहु तेरी इसी भूमि पर।
यहाँ केवली प्रभु देते उपदेश रागहर॥
ध्वजा पताका कलश युक्त भू भवन मनोहर।
सप्तम भवन भूमि है यह सम्पूर्ण दीप्ति कर॥

श्री जिनवर का समवशरण यह महिमामय है।
तीन भुवन में गूँज रही जिनवर जय-जय है॥
धन्य धन्य वे जीव यहाँ आ दर्शन पाते।
दिव्य ध्वनि सुनकर अनादि का मोह नशाते॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिस्थिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितभवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितभवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

ताटंक

क्रोध कषाय नरक-दुख दाता भव-भव तक दुःखदायी है।
मान कषाय नीच-गति दाता नहीं रंच सुखदायी है॥
अपना महिमामय सम्यक् जल अपने हाथों भरूँ संभाल।
अपनी ज्ञान चेतना जागृत करके लूँ आनन्द विशाल॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितभवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कषाय माया के वश है वह तिर्यंचगति पाता है।
लोभ कषाय हृदय में है तो खोटी गति में जाता है॥
सिद्ध स्वपद चंदन के स्वामी तुम हो शाश्वत् सिद्ध-स्वरूप।
मुक्ति-वधू के श्रेष्ठ सुवर हो त्रिभुवन-पति चैतन्य अनूप॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितभवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अनंतानुबंधी चारों ही भीषण दुःखदायी लूँ जान।
सदा कुगति में भ्रमण कराती करती जीवों को हैरान॥
जब मिथ्यात्व भाव जाता क्षय होती अनंतानुबंधी।
भावी जीवन अक्षत होता जो था कारागृह बंदी॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितभवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

अप्रत्याख्यानावरणी है तो अणुव्रत का नाम नहीं।
अविरति के भावों से बंधकर ज्ञानपुष्प अमलान नहीं॥

मुख्य बंध का कारण है मिथ्यात्व करूँ इसका संहार।
विषयों में सुख बुद्धि रही तो होगा भव-दुख अपरम्पार॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरण स्थितभवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्याख्यानावरणी है तो फिर संयम होगा न कभी।
पंच महाव्रत की महिमा से रहित दशा दुखमयी सभी॥
इसके क्षय बिन शुक्लध्यान होता न कभी किंचित प्रारम्भ।
इसके क्षय से हो सकता है शुक्ल ध्यान का शुभ आरम्भ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितभवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यदि कषाय संज्वलन हृदय है नोकषाय क्यों होंगी क्षीण।
भ्रमण चतुर्गति नहीं टलेगा होगा हृदय न मोह विहीन॥
जब चारित्र दीप जलता है तब होता है मोह अभाव।
बिना किसी झंझट के होता अपना उज्जवल शुद्ध स्वभाव॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितभवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय महामोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जब कषाय क्षय होती है तो मिलता है शिव-सुख समुदाय।
है कषाय को धीरे-धीरे क्षय करने का ज्ञान उपाय॥
धर्म-भाव की धूप अनूठी मिल जाती है भली प्रकार।
चार घातिया क्षय हो जाते होता है आनन्द अपार॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितभवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

इसी भाँति योगों को क्षय करने का भी है श्रेष्ठ उपाय।
एक समय में योग नाश कर पाऊँ सिद्ध स्वपद सुखदाय॥
इसी सुविधि से पूर्ण मोक्षफल मिल जाता है ज्ञानी को।
अपद-भाव ही दुख दाता है एक मात्र अज्ञानी को॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितभवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अपना ज्ञान भाव ध्याते ही प्रगटित होता आत्म स्वरूप।
रवि कैवल्य प्रकाशित होता मिलता पद सर्वज्ञ अनूप॥
यथाख्यात भी चरण चूमता रत्नत्रय हो जाता पूर्ण।
एक समय में पद अनर्घ्य मिल जाता निजानन्द रस पूर्ण॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितभवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

वीरछन्द

भवनभूमि के पार्श्व भाग में, श्रीमंडप जिनराज महान।
पूर्व दिशा से पूजा करता, अर्घ्य चढ़ाऊँ हे भगवान॥
तृष्णा की सरिता में डूबा, लोलुपता न गयी स्वामी।
भामंडल में सातों भव लख सुमति हृदय जागी नामी॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य भवनभूम्यां पूर्व दिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवनभूमि के निकट श्रीमंडप ऊपर जिनराज प्रधान।
दक्षिण दिशि से पूजन करके, अर्घ्य चढ़ाऊँ तुम्हें महान॥
भव तन-भोगों से न डरा मैं, ऐसा सुभट मूढ़ हूँ नाथ।
भावमरण प्रतिसमय किया है, तजा न परभावों का साथ॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य भवनभूम्यां दक्षिणदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवनभूमि के निकट, श्रीमंडप पर हैं तीर्थेश महान।
पश्चिम दिशि से अर्घ्य चढ़ाऊँ वंदन करता भाव प्रधान॥
आज विदारण मोहकर्म कर संवर की महिमा लाऊँ।
आश्रव भावों का निरोध कर, शुद्ध निर्जरा प्रगटाऊँ॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य भवनभूम्यां पश्चिमदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवनभूमि के निकट, श्रीमंडप में तीर्थंकर भगवान।
उत्तर दिशि से अर्घ्य चढ़ाऊँ करूँ आत्मा का ही ध्यान॥
त्रिभुवन पूज्य अचिंत्य आपकी अद्भुत महिमा जग विख्यात।
गुणभूषण जिनके दर्शन कर, तज दूँ सब दूषण कुख्यात॥ ४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य भवनभूम्यां उत्तरदिशातः दृश्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

वीरछन्द

भवनभूमि में दिव्य महोदय मंडप की द्युति अभिनव है।
भवनवासि देवों के द्वारा भवनभूमि रक्षित नव है॥
भव्यकूट है एक यहाँ पर भव्य जीव ही आते हैं।
जो अभव्य हैं भव्यकूट को कभी देख नहिं पाते हैं॥
एक सहस्र स्तंभों से यह निर्मित है उत्तम छविमान।
मूर्तिमती श्रुतदेवी इसमें विद्यमान रहती द्युतिमान॥
महा-अर्घ्य अर्पित करता हूँ मैं हूँ महाभाग्यशाली।
करूँ भावश्रुतज्ञान सिद्धपुर पाऊँ ध्रुव सुषमाशाली॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य भवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

समवशरण जिनराज का, भवन-भूमि से युक्त।
निज स्वभाव जो साधते हो जाते हैं मुक्त॥

ताटंक

"परदव्वाओ दुग्गई" समझो पर को तज निज में आओ।
नित्य अनंत त्रिकाली ध्रुव चैतन्य द्रव्य महिमा लाओ॥

जब विकराल बाघ आता है खड़ा नहीं रहता प्राणी।
दौड़ लगाकर जान बचाता त्यों पर से भगता ज्ञानी॥
है विकल्प का अंश न मेरा निर्विकल्प हूँ अविकल्पी।
हूँ चैतन्य धातु से निर्मित सदा सर्वदा अविजल्पी॥
मोक्षमार्ग में अरहंतों का आश्रय भी उपयुक्त नहीं।
यह बाधक है रंच न साधक होता प्राणी मुक्त नहीं॥
अगर मुक्त होना है तो अब शुद्ध आत्मा का वंदन।
एक इसी सम्यक् उपाय से अष्ट कर्म हर लूँ बंधन॥
पर द्रव्यों का है स्वतंत्र परिणमन नहीं मेरे वश में।
ध्यान छोड़कर ही क्यों रहता प्रतिपल प्रतिक्षण भव-रस में॥
मेरा वीर्य अनंत रुका है पर से धारा मोड़ अभी।
पर से कुछ कल्याण न होगा अतः उन्हें दूँ छोड़ अभी॥
विपरीताभिनिवेश त्याग कर आत्मतत्त्व में आज समा।
आत्म तत्त्व की सहज छाँव में भेद ज्ञान की जला शमा॥
यही त्रिकाली मार्ग मोक्ष का, यह निश्चय भूतार्थ कहा।
यही पार ले जाने में सक्षम, ये ही परमार्थ अहा॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितभवनभूमिभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

समवशरण की भवन-भूमि अति दर्शनीय,।
आत्म-भूमि ही एक मात्र है वंदनीय॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पांजलि क्षिपेत्

* * *

13

भवन-भूमि सुस्थित जिन-स्तूप पूजा

स्थापना

रोला

सप्तम भूमि श्री जिनवर स्तूप वंदिए।
चारों दिशि में हैं छत्तीस देखं नंदिए॥
रत्नबिम्ब हैं स्वर्णबिम्ब हैं अतिशय पावन।
अरहंतों की पावन मुद्रा है मन भावन॥

पूजन का सौभाग्य मिला है भाग्योदय से।
समवशरण महिमा को जोड़ूँ आत्म निलय से॥
आत्म-ज्ञान का अनुपम अवसर मैंने पाया।
समवशरण को निरख-निरख कर मन हरषाया॥

भवन-भूमि स्तूप जिनेश्वर के चैत्यालय।
समवशरण जिन-महिमा धारी श्रेष्ठ शिवालय॥
पंचमगति आनन्द प्रदाता कल्पद्रुम हैं।
हाथ पकड़ शिवपुर ले जाने में सक्षम हैं॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिस्थितजिनस्तूपजिनबिम्बसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिस्थितजिनस्तूपजिनबिम्बसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिस्थितजिनस्तूपजिनबिम्बसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

गीतिका

ज्ञान जल के बिन सकल व्यवहार मृगतृष्णा प्रभो।
हो रहा आसक्त ज्ञेयों में भ्रमा हूँ हे विभो॥

भवन-भूमि महान जिन स्तूप की पूजन करूँ।
विजय पंचेन्द्रिय करूँ परमार्थ का आदर करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिस्थितजिनस्तूपजिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

स्पर्श इन्द्रिय लुब्धता दुर्गन्ध में ही व्यस्त हो।
मूढ़ गज सम हो बँधा हूँ वासना से त्रस्त हो॥
शुद्ध चेतन मलय से सुरभित सदा परमात्मा।
चरण द्वय में गन्ध अर्पित गहूँ निज शुद्धात्मा॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिस्थितजिनस्तूपजिनबिम्बभ्यो संसारताप - विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रूर रसना वश बहुत दुख भोगता पल पल सदा।
मूढ़ मत्स्य समान हे जिन! फँसा हूँ मैं सर्वदा॥
अक्षत समान निजात्म का अवलम्ब अक्षत लूँ प्रभो।
दर्श- ज्ञान- चरित्रमय परिणति अखण्डित हो प्रभो॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिस्थितजिनस्तूपजिनबिम्बभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

दुर्गन्ध और सुगन्ध में आसक्त होता मैं सदा।
भ्रमर कमल सुगन्धवश ज्यों प्राण तजता सर्वदा॥
गुण अनन्त सुगन्धमय चैतन्य विकसित सुमन से।
नाश कर परगन्ध वाञ्छा जजूँ समकित सुमन ले॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिस्थितजिनस्तूपजिनबिम्बेभ्यो कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रंग इस अध्यात्म का जिस पर चढ़ा वो तृप्त है।
विषय रंग की वासना में जो रंगा वह त्रस्त है॥
विविध रंगों को लखा पर चिर अतृप्त रही क्षुधा।
दीप लौ में रूप लोभी शलभ ज्यों जलता सदा॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिस्थितजिनस्तूपजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्ण इन्द्रिय वश हिरण ज्यों अन्ध है अज्ञान से।
मैं भी दुखी हूँ हे प्रभो ! इस रागिनी के राग से ॥
मोहवश मैं आज तक विषयान्ध हो विष पी रहा।
किन्तु अब निज चेतना की ज्योति में हूँ जी रहा ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिस्थितजिनस्तूपजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य की ध्यानाग्नि में अब विषय ईंधन को दहूँ।
विषयाभिलाषा से रहित हो अचल निज पद में रहूँ ॥
भोग पञ्चेन्द्रिय विषय में ही लुभाया मैं सदा।
कष्ट चहुँ गति में सहे पर सुख न पाया लघु कदा ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिस्थितजिनस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

विषय सुख का स्वाद मधुरिम जानता अज्ञान से।
किन्तु मधुविषमय दुफल यह नहीं जाना ज्ञान से ॥
चैतन्य तरु के फल अतीन्द्रिय रस भरे शास्वत अहा।
प्राप्त करके भव्यजन ने अज अमर शिवपद लहा ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य भवनभूमिस्थित जिनस्तूप। जिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पञ्च इन्द्रिय विषय को बहुमूल्य माना हे प्रभो !
परमाणु भी मेरा नहीं तब मूल्य इसका क्या प्रभो ॥
आज चरणों में विसर्जित विषमयी यह वासना।
प्रगट हो अनमोल निज चैतन्य की आराधना ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिस्थितजिनस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

(पूर्व दिशा स्थित जिन स्तूपों को अर्घ्य)

सोरठा

भवन भूमि स्तूप पूरब दिशि नव जानिये।
पृथक् पृथक् प्रभु आज भाव सहित पूजन करूँ॥
जिनप्रतिमा संयुक्त भव्य प्रथम स्तूप है।
पूजूँ मन वच काय पाऊँ धारा ज्ञान की॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिपूर्वदिशास्थितप्रथमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनप्रतिमा संयुक्त यह दूजा स्तूप है।
पूजूँ मन-वच-काय समकित का वैभव मिले॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपूर्वदिशास्थितद्वितीयस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीजा जिन स्तूप रत्न बिम्ब से शोभता।
कर अनुभव रस पान पाऊँ प्रभु चारित्र निज॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपूर्वदिशास्थिततृतीयस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौथा जिन स्तूप सिद्ध बिम्ब से शोभता।
निज अनुभव रस युक्त् पाऊँ निज अस्तित्व ध्रुव॥ ४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपूर्वदिशास्थितचतुर्थस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचम जिन स्तूप जिन प्रतिमा संयुक्त है।
ज्ञाता दृष्टा भाव जागृत हो उर में प्रभो॥ ५॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपूर्वदिशास्थितपंचमस्तूपजिनबि ेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षष्टम जिन स्तूप सिद्ध बिम्ब से युक्त हैं।
निज स्वभाव परिपूर्ण जागृत हो उर में प्रभो ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपूर्वदिशास्थितषष्टमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्तम जिन स्तूप सिद्ध बिम्ब अविकार हैं।
ध्रुव ज्ञायक निज भाव भवसागर पीड़ा हरे ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपूर्वदिशास्थितसप्तमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम जिन स्तूप सिद्ध बिम्ब संयुक्त हैं।
धौव्य त्रिकाली भाव भव सागर दुःख क्षय करे ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपूर्वदिशास्थितअष्टमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नवमा जिन स्तूप जिन प्रभु की प्रतिमा परम।
ज्ञान प्राप्त की शक्ति मेरे उर जागे प्रभो ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपूर्वदिशास्थितनवम्स्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दक्षिण दिशा स्थित जिन स्तूपों को अर्घ्य)

दोहा

भवन भूमि दक्षिण दिशा नव जिनवर स्तूप।
भाव सहित पूजन करूँ पाऊँ निज चिद्रूप ॥
पहला जिन स्तूप है जिन प्रतिमा संयुक्त।
पूजन कर होऊँ सुखी भव्य भावना युक्त् ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिदक्षिणदिशास्थितप्रथमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दूजा जिन स्तूप है जिन प्रतिमा संयुक्त।
पूजन करके हो सुखी आत्मभावना युक्त ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिदक्षिणदिशास्थितद्वितीयस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीजा जिनस्तूप है सिद्ध बिम्ब से युक्त।
आत्मसिद्धि की साधना से हो जाऊँ युक्त ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिदक्षिणदिशास्थिततृतीयस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौथा जिनस्तूप है सिद्ध बिम्ब संयुक्त।
निजस्वभाव की साधना से होऊँ मैं मुक्त ॥ १३ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिदक्षिणदिशास्थितचतुर्थस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचम जिनस्तूप है रत्न बिम्ब से युक्त।
सम्यक्दर्शन शक्ति पा हो जाऊँ मैं मुक्त ॥ १४ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिदक्षिणदिशास्थितपंचमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षष्टम जिनस्तूप है परमपूज्य शिवकार।
सकल ज्ञेय-ज्ञायक बनूँ हो आनन्द अपार ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिदक्षिणदिशास्थितषष्टमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्तम जिनस्तूप है परमपूज्य शिवरूप।
सर्व ज्ञेय ज्ञाता बनूँ पाऊँ सिद्ध स्वरूप ॥ १६ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिदक्षिणदिशास्थितसप्तमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम जिनस्तूप है, मोक्ष सौख्य दातार।
भेद ज्ञान की प्राप्ति का स्वाध्याय आधार ॥ १७ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिदक्षिणदिशास्थितअष्टमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नवम जिनस्तूप है सबको मंगलरूप।
जिनपूजा से प्राप्त हो अपना आत्मस्वरूप ॥ १८ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिदक्षिणदिशास्थितनवमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पश्चिम दिशा स्थित जिन स्तूपों को अर्घ्य)

दोहा

भवन भूमि के जानिये, वीथी पश्चिम मध्य।
नव जिनवर स्तूप हैं अतिपावन अतिभव्य॥
प्रथम दिव्य स्तूप है छवि अरहन्त सुयुक्त।
केवलज्ञान प्रकाश पा होते प्राणी मुक्त॥ १९॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपश्चिमदिशास्थितप्रथमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वितीय दिव्य स्तूप है छवि अरहन्त महान।
केवलज्ञान महान से मिलता पद निर्वाण॥ २०॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपश्चिमदिशास्थितद्वितीयस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तृतीय श्रेष्ठ स्तूप जिन रत्नबिम्ब से युक्त।
रत्नत्रय की प्राप्ति कर मैं हो जाऊँ मुक्त॥ २१॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपश्चिमदिशास्थिततृतीयस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह चतुर्थ स्तूप जिन सिद्धों के हैं बिम्ब।
स्वचतुष्टय को जानकर देखूँ निज प्रतिबिम्ब॥ २२॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपश्चिमदिशास्थितचतुर्थस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह पंचम स्तूप है सिद्ध बिम्ब से युक्त।
अस्तिकाय कुल पांच हैं निज निज बल संयुक्त॥ २३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपश्चिमदिशास्थितपंचमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षष्टम जिन स्तूप है जिन प्रतिमा संयुक्त।
छह द्रव्यों के ज्ञान से हो जाऊँ प्रभु युक्त॥ २४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपश्चिमदिशास्थितषष्ठमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्तम जिन स्तूप है रत्नबिम्ब संयुक्त।
सप्त तत्त्व के ज्ञान से हो जाऊँ मैं युक्त ॥ २५ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपश्चिमदिशास्थितसप्तःस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम जिन स्तूप है छवि अरहन्त महान।
पंच समिति त्रय गुप्ति का हो प्रभु पूरा ज्ञान ॥ २६ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपश्चिमदिशास्थितअष्टमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यही नवम स्तूप है छवि अरहन्त सुयुक्त।
नव तत्त्वों को जानकर हो जाऊँ भव मुक्त ॥ २७ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिपश्चिमदिशास्थितनवमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(उत्तर दिशा स्थित जिन स्तूपों को अर्घ्य)

दोहा

भवन भूमि उत्तर दिशा शिव वीथी के मध्य।
नव स्तूप महान जिन पूजन करते भव्य ॥
दिव्य प्रथम स्तूप जिन वन्दन करूँ त्रिकाल।
विनय सहित पूजन करूँ पाऊँ स्वपद विशाल ॥ २८ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिउत्तरदिशास्थितप्रथमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिव्य द्वितीय स्तूप जिन वन्दन योग्य त्रिकाल।
विनय सहित वन्दन करूँ पाऊँ स्वपद विशाल ॥ २९ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिउत्तरदिशास्थितद्वितीयस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन स्तूप तृतीय है दर्शनीय तिहुँ काल।
ज्ञानभावना प्राप्तकर पाऊँ स्वपद विशाल ॥ ३० ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिउत्तरदिशास्थिततृतीयस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनस्तूप चतुर्थ है वन्दनीय तिहुँ काल।
आत्म भावना से प्रभो होऊँ पूर्ण निहाल ॥ ३१ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिउत्तरदिशास्थितचतुर्थस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचम जिनस्तूप है शुभ वीथी के मध्य।
पूजन कर पाते सभी पंच लब्धियाँ भव्य ॥ ३२ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिउत्तरदिशास्थितपंचमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षष्टम जिनस्तूप है भवन भूमि के मध्य।
पांचों ही समवाय प्रभु पा लेते हैं भव्य ॥ ३३ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिउत्तरदिशास्थितषष्टमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्तम जिनस्तूप है भवन भूमि के मध्य।
भेद ज्ञान विज्ञान ही है मेरा मन्तव्य ॥ ३४ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिउत्तरदिशास्थितसप्तमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम जिनस्तूप है अर्चनीय तिहुँकाल।
सम्यग्ज्ञान प्रकाश पा होऊँ नाथ निहाल ॥ ३५ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिउत्तरदिशास्थितअष्टमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिव्य नवम स्तूप जिन पूजूँ ले शुभ भाव।
आत्म भान कर ज्ञान से पाऊँ शुद्ध स्वभाव ॥ ३६ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिउत्तरदिशास्थितनवमस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

रोला

समवशरण के स्तूपों को सविनय वन्दन ।
चारों दिशि में हैं स्तूप करूँ अभिनन्दन ॥
महा-अर्घ्य अर्पित करके मैं निज को ध्याऊँ ।
श्री जिनवर की महिमा लख उर में हर्षाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभव्यभूमिस्थितस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

दोहा

श्री जिनवर स्तूप हैं तीनों लोक प्रसिद्ध ।
आत्मध्यान की शक्ति से होते हैं सब सिद्ध ॥

दिग्बधू

सम्यक्त्व भावना भा जो शिव सुखदायी है ।
मिथ्यात्व भावना तज यह भव दुःखदायी है ॥
सम्यक्त्व भाव होगा तो सहज ज्ञान होगा ।
चारित्र शुद्ध होगा कैवल्यज्ञान होगा ॥
यह रत्नत्रय तरणी शिवसुख दिलवाती है ।
सिद्धत्व दिलाती है निजपुर ले जाती है ॥
संयम की शोभा से जो भी प्राणी सजते ।
वे निजस्वभाव को ही सम्यक् प्रकार भजते ॥
भव सागर को तरकर निर्वाण सौख्य लाते ।
सादि अनन्त कालों शाश्वत ध्रुव सुख पाते ॥
निर्मल आनन्दमयी अनुपम चेतन मेरा ।
रत्नत्रय निधियों से शोभित केतन मेरा ॥

निज आत्मप्रदेशों का प्रांजल्य प्राप्त होता।
सम्पूर्ण आत्मरसमय फल त्वरित व्याप्त होता॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यभवनभूमिस्थितजिनस्तूपजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

भवन भूमि स्तूप सदावन्दन करूँ।
आत्मशक्ति से सर्व कर्म बन्धन हरूँ॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिन पूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

* * *

भजन

करलो जिनवर का गुणगान, आई सुखद घड़ी।
आई सफल घड़ी, देखो मंगल घड़ी॥ करलो. ॥

वीतराग का दर्शन-पूजन भव-भव को सुखकारी।
जिन प्रतिमा की प्यारी छवि लख मैं जाऊँ बलिहारी॥ करलो. ॥

तीर्थंकर सर्वज्ञ हितंकर महा मोक्ष का दाता।
जो भी शरण आपकी आता, तुम सम ही बन जाता॥ करलो. ॥

प्रभु दर्शन से आर्त रौद्र परिणाम नाश हो जाते।
धर्म ध्यान में मन लगता है, शुक्ल ध्यान भी पाते॥ करलो. ॥

सम्यग्दर्शन हो जाता है मिथ्यातम मिट जाता।
रत्नत्रय की दिव्य शक्ति से, कर्म नाश हो जाता॥ करलो. ॥

निज स्वरूप का दर्शन होता, निज की महिमा आती।
निज स्वभाव साधन के द्वारा सिद्ध स्वगति मिल जाती॥ करलो. ॥

14

महोदय मंडप विराजित श्री केवली पूजन

स्थापना

रोला

सप्तम भवन भूमि में भव्य महोदय मंडप।
यहाँ विराजे श्री केवली रहित भवातप ॥
चार घातिया घात केवली हुये मुनीश्वर।
केवलज्ञान प्रकाश प्राप्त कर हुये ईश्वर ॥

आत्मज्ञान महिमा पा होते जीव केवली।
इनमें भी थोड़े होते हैं मूक केवली ॥
कुछ उपसर्ग केवली होते आत्म शक्ति से।
एक मात्र जुड़ जाते हैं निज आत्म भक्ति से ॥

समुद्घात केवली परम होते हैं ज्ञानी।
कर्म नाश कर पाते सिद्धों की रजधानी ॥
सर्व केवली की पूजन कर पाप हरूँ मैं।
अष्टकर्म दुखमयी यही संसार हरूँ मैं ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यसप्तमभवनभूमिस्थितमहोदयमंडपविराजितसर्वकेवलि भगवन्तः ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यसप्तमभवनभूमिस्थितमहोदयमंडपविराजितसर्वकेवलि भगवन्तः ! अत्र तिष्ठन्तु तिष्ठन्तु ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यसप्तमभवनभूमिस्थितमहोदयमंडपविराजितसर्वकेवली भगवन्तः ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

मत्त सवैया

मैंने अनादि से जितना जल प्रभु पिया बढ़ा भव रोग सदा।
भवसागर दुख का पूर मिला पाया न तृप्त निज भाव कदा ॥

मिथ्यात्व नाश करने को प्रभु केवली शरण में आया हूँ।
अब अनन्तानुबंधी अभाव करने स्वभाव जल लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यसप्तमभवनभूमिस्थितमहोदयमंडपविराजित केवलि-जिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मैंने अनादि से मोह जन्य चन्दन का ही उपयोग किया।
तन ताप गया पर अन्तरंग संसार ताप ज्वर रोग लिया॥
अविरत भावों को क्षय करने केवली शरण में आया हूँ।
अब अप्रत्याख्यानावरणी हरने निज चन्दन लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यसप्तमभवनभूमिस्थितमहोदयमंडपविराजित केवलि-जिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मैंने अनादि से रागमयी तन्दुल का सेवन किया प्रभो।
वृद्धिगत भव समुद्र में तो क्षत पद का दुख ही मिला विभो॥
हरने प्रत्याख्यानावरणी केवली शरण में आया हूँ।
प्रभु पूर्ण देश संयम पाने उत्साह हृदय में लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यसप्तमभवनभूमिस्थितमहोदयमंडपविराजित केवलि-जिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मुझको अनादि से आस्रव भावों की दुर्गन्ध सुहाई है।
बंधों की सुदृढ़ श्रृखंला ही मैंने प्रभु सदा बढ़ायी है॥
सज्जवलन कषाय नाश करने केवली शरण में आया हूँ।
पुष्पांजलि लेकर चरणों में अनुभव रस पीने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यसप्तमभवनभूमिस्थितमहोदयमंडपविराजित केवलि-जिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मुझको अनादि से क्षुधा व्याधि तड़पा तड़पा कर मार रही।
नैवेद्य ज्ञान के मिले नहीं रागिनी राग की व्यथा सही॥

प्रभु क्षमा भाव समरस पाने केवली शरण में आया हूँ।
क्रोधाग्नि बुझाने हे स्वामी नैवेद्य क्षमा मैं लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यसप्तमभवनभूमिस्थितमहोदयमंडपविराजित केवलि-जिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुझको अनादि से ज्ञान क्षयोपशम के ही दीप लगे अच्छे।
मैं मोह तिमिर से अन्ध बना मानादिक भाव लगे सच्चे॥
प्रभु मान कषाय नाश करने केवली शरण में आया हूँ।
मैं विनय भाव का अधिपति हूँ यह दीप विनयमय लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यसप्तमभवनभूमिस्थितमहोदयमंडपविराजित केवलि-जिनेन्द्रेभ्यो महामोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

मायाचारी के भाव किये दुःख पाये पशुगति के विशाल।
एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक तिर्यंच हुआ जल महा ज्वाल॥
माया कषाय को क्षय करने केवली शरण में आया हूँ।
बन जाऊँ तुम सम सहज सरल निज ध्यान धूप अब लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यसप्तमभवनभूमिस्थितमहोदयमंडपविराजित केवलि-जिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लोभाग्नि जली मेरे उर में मैं क्षार-क्षार हो गया देव।
स्वर्गों से नीचे गिरा नाथ एकेन्द्रिय की फिर मिली देह॥
अब लोभ कषाय नाश करने केवली शरण में आया हूँ।
तुम सम संतोषामृत पाने फल शौचभाव के लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यसप्तमभवनभूमिस्थितमहोदयमंडपविराजित केवलि-जिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव के दुख पाये विविध भाँति मनमाने अर्घ्य चढ़ाये हैं।
सुर नर पशु नर्क कुगतियों में भ्रम भ्रम बह राग बढ़ाये हैं॥

शाश्वत अनर्घ्य पद पाने को केवली शरण में आया हूँ।
तप त्याग सत्य संयम आंकिंचन शील अर्घ्य अब लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यसप्तमभवनभूमिस्थितमहोदयमंडपविराजित केवलि-जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

वीरछन्द

पूर्व दिशा के सर्व केवली गंधकुटी में रहे विराज।
स्व-पर प्रकाशक केवलज्ञानी, तुम ही तारण तरण जहाज॥
परमत का हो या निजमत का, उससे करूँ न वाद-विवाद।
अर्घ्य चढ़ाऊँ विनयभाव से निज अनुभवरस का लूँ स्वाद॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य गन्धकुटिपूर्वदिग् विराजमानसर्वकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दक्षिण दिशि के सर्व केवली को वंदूँ त्रययोग सम्हार।
गुण अनंत महिमा से मण्डित, परम ज्ञानपति प्रभु अविकार॥
प्रभु गंभीर ज्ञानसागर से उपजे, दिव्य वचन सुन लूँ।
शुद्ध भाव के अर्घ्य चढ़ाऊँ निज अन्तर में ध्रुव धुन लूँ॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य गन्धकुटिदक्षिणदिग् विराजमानसर्वकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम दिशि के सर्व केवली, वन्दन करूँ हृदय से आज।
निजानन्द रसलीन महाप्रभु, अर्घ्य चढ़ाऊँ निज हित काज॥
परमशुद्धगति उर्ध्व प्राप्त करने की आकांक्षा जागी।
दर्शनमोह संग में लेकर परपरणति देखो भागी॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य गन्धकुटिपश्चिमदिग् विराजमानसर्वकेवलिजिनन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तर दिशि के सर्व केवली, भवनभूमि सुस्थित शिवरूप।
सभी महोदयमंडप राजे, परमोत्तम है शुद्ध स्वरूप॥
सादर सविनय अर्घ्य चढ़ाऊँ, करूँ आत्मा का चिंतन।
सहज शुद्ध चैतन्यतत्त्व लख नाश करूँ मैं भवबन्धन॥४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य गन्धकुटिउत्तरदिग् विराजमानसर्वकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक युक्त केवली को अर्घ्य

गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष कल्याण पाँच से जो हैं युक्त।
उन सबको वंदन करता हूँ, होंगे शीघ्र सभी वे मुक्त॥
सादर सविनय अर्घ्य चढ़ाऊँ, पंचकल्याण विभूषित जिन।
सत्य स्वरूप तत्त्व का सुनकर, नाश करूँ मैं भवबन्धन॥५॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानपंचकल्याणकविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीन कल्याणक युक्त केवली को अर्घ्य

श्रावक गोत्र तीर्थंकर उपजाते हैं उस ही भव में।
वे तप ज्ञान मोक्ष कल्याणक त्रय पाते हैं जीवन में॥
सादर सविनय अर्घ्य चढ़ाऊँ, त्रय कल्याणक केवलिजिन।
सत्य स्वरूप तत्त्व का सुनकर, नाश करूँ मैं भवबन्धन॥६॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानत्रयकल्याणकविभूषितकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वय कल्याणक युक्त केवली को अर्घ्य

जो तपधारी गोत्र तीर्थंकर उपजाते जीवन में।
केवलज्ञान मोक्षकल्याणक द्वय पाते हैं जीवन में॥
सादर सविनय अर्घ्य चढ़ाऊँ, दो कल्याणक केवलिजिन।
सत्य स्वरूप तत्त्व का सुनकर, नाश करूँ मैं भवबन्धन॥७॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानद्वयकल्याणकविभूषितसर्वकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सातिशय केवली को अर्घ्य

गीतिका

सातिशय श्री केवली को हृदय से मेरा नमन।
ज्ञानसागर आत्मध्यानरूढ़ तुम निज में मगन॥
भव्य गन्धकुटी मनोहर में विराजे आप हैं।
इन्द्र सुर नर-नार करते आप का ही जाप हैं॥
दिव्यध्वनि अतिशय सहित लख मोहतम क्षय हो गया।
चरण में अब अर्घ्य अर्पित कर प्रफुलित हो गया॥ ८॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य गन्धकुटिमध्यविराजमानदिव्यध्वनिविभूषितकेवलि जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उपसर्ग केवली को अर्घ्य

प्राप्त केवलज्ञान के थे पूर्व जो निज ध्यान में।
हुआ जब उपसर्ग उन पर अचल रह निज ज्ञान में॥
जय किया उपसर्ग तत्क्षण अनुपसर्ग स्वभाव से।
ज्ञान-केवल-रवि उदित हो जुड़ा आत्म स्वभाव से॥
भव्य गन्धकुटी विराजित हो गए आनन्दघन।
चरण में प्रभु अर्घ्य अर्पित कर लहूँ निज ज्ञानघन॥ ९॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य गन्धकुटिमध्यविराजमानउपसर्गकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सामान्य केवली को अर्घ्य

केवली सामान्य कहलाते उन्हें मेरा नमन।
जय किया उपसर्ग जिनने लहा केवलज्ञान धन॥
मूक हैं प्रभु केवली जिन दिव्यध्वनि खिरती नहीं।
किन्तु उनकी छवि लखकर दृष्टि अब फिरती नहीं॥

लोक और अलोक ज्ञायक किन्तु निज रस लीन हैं।
अर्घ्य अर्पित है चरण में पूर्ण ज्ञान प्रवीण हैं॥ १०॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य गन्धकुटिमध्यविराजमानसामान्यकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तःकृत केवली को अर्घ्य

हरिगीतिका

मात्र अन्तरमुहूरत में कर्म का नाशा वितान।
हुए अन्तःकृत जिनेश्वर केवली जग में महान॥
उसी क्षण पाया प्रभो चैतन्य का मंगल विहान।
अर्घ्य करता हूँ समर्पित गा रहा जग यशोगान॥ ११॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य गन्धकुटिमध्यविराजमान-अन्तःकृतकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुद्घात केवली को अर्घ्य

पूर्ण होती आयु जब पर त्रय अघाति शेष हैं।
केवली जिन कर्मथिति सम करें सब निःशेष हैं॥
अष्ट समयों में सदा ही पूर्ण होती यह क्रिया।
समुद्घात कहें इसे शिवपद निमिष में पा लिया॥
अर्घ्य अर्पित कर रहा मैं भाव से कर वंदना।
पद अनर्घ्य लहूँ जिनेश्वर होय चहुँगति भ्रमण ना॥ १२॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्यगन्धकुटिमध्यविराजमानसर्वसमुद्घात केवलि-जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सयोग केवली को अर्घ्य

द्रव्य-मन तो वर्तता है किन्तु नहिं है भाव-मन।
दिव्यध्वनिमय वचन-किरणों से प्रकाशित हो भुवन॥

द्रव्य-इन्द्रियमय अलौकिक धारते हैं दिव्य तन।
परिस्पंदन है प्रदेशों में अतः संयोगिजिन॥
अर्घ्य मैं करता समर्पित योगियों के ईश को।
भाव युत वन्दन करूँ त्रयजगतपति जगदीश को॥१३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य गन्धकुटिमध्यविराजमानसर्वसंयोगकेवलि जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अयोग केवली को अर्घ्य

पंच लघु अक्षर समय में करें योग निरोध को।
हैं अयोगी केवली जिन नाश कर त्रय योग को॥
अर्घ्य करता हूँ समर्पित योग क्षय के हेतु मैं।
सिद्धपुर साम्राज्य पाऊँ प्राप्त कर निज सेतु मैं॥१४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य गन्धकुटिमध्यविराजमानअयोगकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्ध केवली को अर्घ्य

त्रिविध कर्म विनाश कर जो जा बसे लोकाग्र में।
काल सादि अनन्त तक सुख भोगते चित् लोक में॥
धन्य हैं जो जीव नरभव पाय कर शिव पद लहें।
अर्घ्य करता हूँ समर्पित शीघ्र अब निज पद गहें॥१५॥

ॐ ह्रीं श्री लोकाग्रे विराजमान सर्वसिद्धकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

वीरछन्द

भेदज्ञान की ज्योति जलाकर प्रगटाया है केवलज्ञान।
चार घातिया कर्म नाशकर आप हुए अर्हन्त महान॥
लोकालोक प्रकाशक है जो क्षायिक ज्ञान सदा है एक।
नय व्यवहार बताता उसके संयोगों से भेद अनेक॥

ज्ञेय अनन्त समर्पित जिसमें किन्तु एक वह केवलज्ञान।
महा-अर्घ्य अर्पित करता हूँ प्राप्त करूँ आनन्द महान॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्य गन्धकुटिमध्यविराजमानसर्वकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

श्री केवली पदकमल मैं पूजूँ धर प्रीत।
परभावों से हे प्रभो ! अब तो जाऊँ रीत॥

मानव

चन्द्रिका ज्ञान की पाकर मन मेरा हुआ प्रफुल्लित।
अब भेदज्ञान निधि पाई समकित मिल गया उल्लसित॥
सूरज ने चरण पखारे चन्दा ने न्हवन कराया।
नक्षत्र प्रकीर्णक तारों ने नूतन मंगल गाया॥
गगनांगन लख हरषाया धरती ने शीष झुकाया।
मेरे स्वज्ञान ने मुझको निजदर्शन सहज कराया॥
निज परिणति मेरी नाची हर्षित हो छम-छम-छम-छम।
अनगिनती वाद्य गुणों के स्वयमेव बज उठे झन-झन॥
द्रम-द्रम शहनाई बाजी प्रतिक्षण मृदंग की धम-धम।
सारंगी तुन-तुन बोली अपने भीतर ही थम-थम॥
बीणा बज रही स्वभावी बांसुरी संयमित बजती।
चेतन की निर्मल छवि तो सम्यक् स्वभाव से सजती॥
आनन्द अतीन्द्रिय पाया मैं बना पूर्ण आनन्द घन।
गुणरत्नों की वर्षा पा अंगना में बरसा कंचन॥

उज्वलता मैंने पायी निर्मलता उर मुसकायी।
वैराग्य घटा ने घिर-घिर क्षमता अपनी दरशायी॥
कर्मों की छाया भागी निर्जरा पवन पाते ही।
अविलम्ब सिद्ध पद पाया बस कर्मों के जाते ही॥
जीवत्व शक्ति पूरी पा ध्रुवधाम मिला अविनश्वर।
ज्ञानामृत बरस रहा है गुण मिले महान परस्पर॥
अनुभव सुगंध शिवसरि की मेरे उर को भाई है।
लो मुक्त वधु सज धज कर स्वयमेव निकट आयी है॥
जिनवच का रसिक बना मैं त्यागे विभाव सब दुष्क्रिय।
भव-दुख अरण्य दावानल शीतल कर दूँ हो सक्रिय॥
परिणय की बेला का तो संयम मुहूर्त बतलाता।
उच्चार ज्ञानमंत्रों का कर फेरे भी पड़वाता॥
तज दिया द्वैत दोनों ने अद्वैत हो गये तत्क्षण।
आनन्द पा रहे शिव सुख-शैय्या का प्रतिपल प्रतिक्षण॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यसप्तमभवनभूमिस्थितमहोदयमंडपविराजित केवलि-जिनेन्द्रेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

श्रेष्ठ महोदय मंडप राजित केवली।
भाव सहित पूजूँ मैं पाऊँ शिव गली॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

* * *

15

श्रीमंडप भूमि पूजन

स्थापना

रोला

समवशरण की अष्टमभूमि श्री मंडप है।
अद्वितीय वैभवशाली बहु सुर रक्षित है॥
चारों दिशि में चार वीथियाँ शोभाशाली।
तोरण द्वारों से संयुत गोपुर गुणशाली॥
गंधकुटी है मध्यसभा द्वादश से शोभित।
जगती का सारा वैभव है इस पर मोहित॥
समवशरण में सर्वश्रेष्ठ यह भव्य भूमि है।
इन्द्र आज्ञा कुबेर निर्मित दिव्य भूमि है॥
प्रथम पीठ है वसुमंगल द्रव्यों से शोभित।
यक्ष शीष पर धारण करते धर्मचक्र सित॥
गंधकुटी की दिव्य सुछवि यह तीन पीठ युत्।
द्वितीय पीठ यह विविध ध्वजाओं से है संयुक्त॥
तृतीय पीठ है रत्नजड़ित सिंहासन शोभित।
अंतरीक्ष तीर्थेश विराजित त्रिभुवन मोहित॥
श्री मंडप की दिव्यभूमि जिन समवशरण में।
सारा ही संसार आ गया श्री चरण में॥
जिन पूजन से पुण्य भाव परिणति में आता।
बोधिलाभ का अवसर स्वतः सहज मिल जाता॥
जागा है सौभाग्य हमारा प्रथम बार प्रभु।
पूजन करने आये हैं शुभभाव धार प्रभु॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभवनभूमिस्थितश्रीमंडपभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौष्ट (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभवनभूमिस्थितश्रीमंडपभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभवनभूमिस्थितश्रीमंडपभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

वीरछन्द

ज्ञान गगन मण्डल तक ले जाने में श्रद्धा श्रेष्ठ प्रधान।
आत्मतत्त्व का अश्रद्धान है तो खोटी गति नेष्ठ महान॥
ज्ञान भावना जल की धारा बहती न्हवन कराने को।
सर्व कलुषता धो डालेगी मुझे मोक्ष ले जाने को॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभवनभूमिस्थितश्रीमंडपभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिभुवन तिलक शीर्ष चूड़ामणि मात्र ज्ञान गुण से होता।
अगर ज्ञान चन्दन न पास हो तो चारों गति में रोता॥
ज्ञान भावना शीतल चन्दन जो भी चर्चित करते हैं।
कर्मों का सन्ताप ताप अन्तर्मुहूर्त में हरते हैं॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभवनभूमिस्थितश्रीमंडपभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान गगन मण्डल में उड़ने वाले पाते मोक्षमहान।
जो न ज्ञान के संग उड़ते हैं वे पाते भव कष्टप्रधान॥
ज्ञान भावना के अक्षत ही अक्षय पद के दाता हैं।
महामोक्षसुख देनेवाले तीन लोक विख्याता हैं॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभवनभूमिस्थितश्रीमंडपभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

काम वेदना से पीड़ित जन कभी न निजपद पाता है।
कामबाण विध्वंस किये बिन नहीं मुक्ति सुख लाता है॥

ज्ञान भावना पुष्प शीलगुणधारी है निष्काम स्वरूप।
महाशील सागर से मिलता शिवपुर में विश्राम अनूप॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभवनभूमिस्थितश्रीमंडपभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जितनी जग में खाद्य वस्तुएँ भक्ष्य अभक्ष्य सभी खायी।
बुझी नहीं उदराग्नि कभी भी पीड़ा सिमट-सिमट आयी॥
ज्ञान भावना सुचरु सलोने अनुभव रस के स्रोत सदा।
क्षुधाव्याधि हर तृप्ति प्रदाता निजरस ओत प्रोत सदा॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभवनभूमिस्थितश्रीमंडपभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चहुँगति दुःखमय भव अंधियारे में ही भटक रहा हूँ नाथ।
दिव्यज्ञान की ज्योति न पायी हुआ न अब तक अतः सनाथ॥
ज्ञान भावना दीप ज्ञानमय स्वपर प्रकाशक ज्योतिर्मय।
मोह तिमिर हरने वाले ही पाते चारों गति पर जय॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभवनभूमिस्थितश्रीमंडपभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो महामोहान्धाकरविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों के ही वृक्ष उगाये आस्रव बीज सदा बोये।
बंध नष्ट करने के अवसर पाये तो वे भी खोये॥
ज्ञान भावना धूप ध्यानमय आत्मधर्म की परिचायक।
अष्टकर्म रज क्षयंकरी है पूर्ण मुक्ति सुख की दायक॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभवनभूमिस्थितश्रीमंडपभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो भी ज्ञेयलुब्ध रहता है निज को जान नहीं पाता।
ज्ञान-ज्ञेय ज्ञाता विकल्प को ही वह ध्यान मान जाता॥

ज्ञान भावना बीज ज्ञानमय वृक्ष पल्लवित करता है।
मोक्ष सुफल जिसमें लगता वह तरुवर भव दुःख हरता है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभवनभूमिस्थितश्रीमंडपभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म ज्ञान की शक्ति जगा जो अपना ध्यान लगाते हैं।
वे ही मुक्तिरमा का आँचल थाम मोक्ष सुख पाते हैं॥
ज्ञान भावना अर्घ्य अष्टविध जो भी हृदय सजायेगा।
वही अनर्घ्य स्वपद पाएगा त्रिभुवनपति बन जायेगा॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभवनभूमिस्थितश्रीमंडपभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

प्रथम पीठ सम्बन्धी अर्घ्य

दोहा

प्रथम पीठ पूजन करूँ, धर्मचक्र संयुक्त।
शीष धारते यक्ष सुर शुभभावों से युक्त॥

अष्टद्रव्य मंगलमयी तिष्ठित चारों ओर।
जिनमंगल संदेश की नित्य सुहानी भोर॥

दर्पण झारी कलश शुभ है ठोना छविमान।
ध्वजा विजन शुभ स्वास्तिक वाद्य यंत्र सुस्थान॥

ये वसुमंगल द्रव्ययुत् गंधकुटी द्युतिवान्।
जिन महिमा के चिन्ह लख, गाऊँ मंगल गान॥

तीर्थंकर को नमनकर हर्षित होते भव्य।
विनयसहित पूजन करूँ, लेकर प्रासुक द्रव्य॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभूमिस्थितश्रीमंडपे प्रथमपीठविभूषिततीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वितीय पीठ सम्बन्धी अर्घ्य

रोला

समवशरण की गंधकुटी की द्वितीय पीठपर।
नवनिधि मंगलमयी तथा घट धूप दिव्यवर॥
अष्ट अष्ट वसु दिशा महाध्वज लहराते हैं।
वसुचिन्हों से शोभित होकर फहराते हैं॥
वृषभ, सिंह, कपि गरुड़ कमल, माला, मयूर, गज।
ये शुभ चिन्हांकित अतिसुन्दर मंगलमय ध्वज॥
निवनिधि काल महाकाल पाण्डु मानव हैं।
शंख, पद्म, वैसर्प, जु पिंगल महारत्न हैं॥
ये नवविधियाँ मात्र चक्रवर्ती ग्रह होतीं।
अथवा गन्धकुटी की द्वितीय पीठ पर होतीं॥
गन्धकुटी के दर्शन कर मैं धन्य हुआ हूँ।
निज निधि लखकर निज से आज अनन्य हुआ हूँ॥

दोहा

तीर्थंकर को नमन कर, हर्षित होते भव्य।
विनय सहित पूजन करूँ, लेकर प्रासुक द्रव्य॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभूमिस्थितश्रीमंडपे द्वितीयपीठविभूषिततीर्थंकर-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तृतीय पीठ सम्बन्धी अर्घ्य

दोहा

गंधकुटी तीर्थेश की तीन पीठ से युक्त।
तृतीय पीठ है रत्नमय कमलासन संयुक्त॥
अंतरिक्ष जिनराज हैं निजानंद रसलीन।
चौंसठ चमर सु ढोरते चौंसठ यक्ष प्रवीण॥

गंधोदक वर्षा सहज पुष्प वृष्टि सुरजन्य।
दिव्यध्वनि मंगलमयी सुन होते सब धन्य॥

परमौदारिक देह है जिसमें नहीं निगोद।
प्रातिहार्य वसु देखकर होता हर्ष प्रमोद॥

तीनछत्र चौंसठ चमर तरु अशोक छविमान।
भामण्डल अरु दिव्यध्वनि सिंहासन द्युतिवान॥

पुष्प वृष्टि आकाश से दुन्दुभि देवमहान।
सारी जगती गा रही तीर्थंकर जयगान॥

चार बार हो दिव्यध्वनि मंगलमय विख्यात।
गणधर स्वामी झेलते झरता ज्ञान प्रपात॥

भव्य प्रफुल्लित हो रहे उर आनन्द अपार।
धन्य धन्य तीर्थेश की महिमा अपरम्पार॥

तीर्थंकर त्रैलोक्यपति श्री अरहंत महान।
परम ज्ञान कल्याण से भूषित जिन भगवान॥

परम अनंत चतुष्टयी निज ज्ञायक जिनराज।
कर्म घातिया नाशकर पाया निजपद राज॥

भावमयी पूजन करूँ क्रिया हीन हूँ देव।
आत्मज्ञान की प्राप्ति प्रभु मुझको हो स्वयमेव॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभूमिस्थितश्रीमंडपे तृतीयपीठविभूषिततीर्थंकर-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

वीरछन्द

मंगलमयी पीठ रत्नत्रय पर शोभित हैं श्री जिनराज।
पुण्यपीठ से अन्तरीक्ष हैं पाया है निज गुण साम्राज्य॥

ध्रुव चैतन्य आत्मसिंहासन पर सुस्थित हैं आप जिनेश।
लोकालोक प्रकाशक केवल-सरसिज पर शोभित तीर्थेश॥
महा-अर्घ्य मैं करूँ समर्पित विनय भाव से हे परमेश।
गुण अनन्तमय अर्घ्य प्राप्त कर तुम सम होऊँ त्रैलोक्येश॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य-अष्टमभूमिस्थितश्रीमंडपतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

श्री मण्डप जिनराज का तीन पीठ से युक्त।
भाव सहित वन्दन करूँ विमल भाव से युक्त॥

मानव

श्री जिनवर समवशरण का सुरपति करते अभिनन्दन।
रवि शशि भी प्रभायुक्त हो जिन प्रभु को करते वन्दन॥
इन्द्राणी पुलकित करती हैं नाटक नृत्य मनोहर।
सुरबालायें छम-छम-छम करती हैं नृत्य सु सुन्दर॥
नव भरतनाट्यम मनहर करते हैं सुर आतुर हो।
मृदुस्वर में वाद्य बजाते अन्तर आनन्द प्रचुर हो॥
गगनांगन पुष्पवृष्टि से आच्छादित हुयी धरा है।
त्रिभुवन पति आभामण्डल तेजस्वी पूर्ण खरा है॥
जिनध्वज लहराता उन्नत चंचल सु पवन शरमाती।
बहती बयार अति सुरभित गंधोदक पावन लाती॥
जितने भी सिद्ध प्रभो हैं वे देख रहे ज्ञायक को।
दे रहे बधाई हर्षित त्रिभुवनपति शिवनायक को॥

तज वैरभाव को पशु भी आपस में निकट बैठते।
जिन दिव्यध्वनि को सुनकर प्रभु चरण निहार लेटते॥
मानव जागृत हो जाते तज निशा मोह की दुःखकर।
समकित युत संयम लेते जो है सदैव भवदुःख हर॥
नक्षत्र प्रकीर्णक तारे आनन्दित हो गाते हैं।
ढोरते यक्ष चामर जब लख सब सुर हर्षाते हैं॥
इस अनुपमेय रचना का वर्णन भाषा में दुर्लभ।
यह दर्शनीय रचना है अति पुण्योदय से सुलभ॥
जिननाम सहस्र यहाँ सुन संताप नष्ट हो जाते।
जन्मान्तर के संचित अघ सारे विनष्ट हो जाते॥
श्रीमण्डप भूमि मनोहर पावन पवित्र सुखदायी।
जग के समस्त भव्यों को जिनमहिमा ही शिवदायी॥

ॐ ह्रीं श्रीं समवशरणमध्यअष्टमभूमिस्थितश्रीमंडपतीर्थंकरजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

अन्तर्मुख मुद्रा युत हैं जिनराज जी।
चिदानन्द वैभव दर्शन कर आज ही॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो!
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत

***

16

वर्तमान जिनचौबीसी पूजन

स्थापना

रोला

ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, नमन करूँ मैं।
सुमति, पद्म, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, हृदय वरूँ मैं॥
पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस के सुगुण सजूँ मैं।
वासुपूज्य, प्रभु, विमल, अनन्त, सदैव भजूँ मैं॥
धर्म, शान्ति, श्री कुन्थनाथ, अरप्रभु को वन्दन।
मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमी धन्य धन्य जिन॥
पार्श्वनाथ, श्री वर्द्धमान चरणों में आऊँ।
वर्तमान चौबीसों तीर्थंकर को ध्याऊँ॥

दोहा

समवशरण तीर्थेश का त्रिभुवन में प्रख्यात।
भक्ति सहित पूजा करूँ पाऊँ ज्ञान प्रभात॥

ॐ ह्री चतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्री चतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्री चतुर्विंशतितीर्थंकरसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

विजया

शुद्ध चैतन्य घन आत्मा के लिये।
मात्र अपना चतुष्टय ही पर्याप्त है॥
पर के सिद्धत्व से लेना-देना है क्या।
मेरा सिद्धत्व तो मेरे ही पास है॥

शुद्ध ज्ञानाब्धि जल मेरे भीतर भरा।
फिर भी मैं खोजता हूँ यहाँ अरु वहाँ॥
मत्स्य जलसिन्धु में रहके प्यासा रहे।
मूढ़ इसके बराबर मिलेगा कहाँ॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मात्र भवताप से आत्मा है दुःखी।
जल रहा हूँ विषय भोग की आग में॥
पास में शुद्ध शीतल सुचन्दन सुरभि।
फिर भी दुःखिया बना स्वर्ग के राग में॥
राग की रागिनी मैं बजाता सदा।
मुझको संसार ज्वर से न भय कुछ हुआ॥
जब भी अवसर मिला मैं भ्रमित ही रहा।
अपनी परिणति का आंचल न अब तक छुआ॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्रुव अमरता का सागर मैं शुद्धात्मा।
फिर भी जन्मरु मरण रोग से युक्त हूँ॥
अपने अक्षय स्वपद से सदा बेखबर।
इसीलिये हो न पाया कभी मुक्त हूँ॥
ज्ञान का आवरण मेरे ऊपर पड़ा।
मोह की वारुणी पीके बेहोश हूँ॥
सारी दुनिया का धन मुझको मिल जाये तो।
फिर भी रहता सदा ही असंतुष्ट हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम की अग्नि से मैं जला रात दिन।
शील भावी स्वभाव को जाना नहीं॥
पुष्प भाये नहीं हैं महाशील के।
अपनी परिणति का कहना भी माना नहीं॥
शुद्ध दृष्टि से मैं तो परमब्रह्म हूँ।
किन्तु परिणति दुराचारिणि का हूँ दास॥
इसीलिये मुक्ति लक्ष्मी न वरती मुझे।
मुझको भाता है फिर फिर निगोदों का वास॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

भोग की वासना से क्षुधा पूर्ति की।
शुद्ध नैवेद्य मुझको न भाये कभी॥
चिर अतृप्ति का है रोग मुझको प्रचुर।
हैं विषय भोग विषमय सुहाए चरु॥
शुद्ध सन्मार्ग अब तक न पाया कभी।
इससे खाता नहीं ज्ञान औषधि कभी॥
बात आगम की बिल्कुल नहीं मानता।
साधु मुनिराज समझाके हारे सभी॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह का भूत सिर पर चढ़ा है अभी।
घोर अज्ञान है मेरे भीतर भरा॥
ज्ञान का दीप मैंने जलाया नहीं।
ज्ञान का नाम सुनकर सदा मैं डरा॥
मैंने मिथ्यात्व पाँचों बड़े प्रेम से।
अपने घर में बसाये हैं अपना समझ॥

दीप सम्यक्त्व का यदि जलाता तो फिर।
घोर अज्ञान से शीघ्र जाता सुलझ॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म आठों के बन्धन से मैं हूँ बँधा।
आस्रवभाव में लीन हूँ मैं सदा॥
शुद्ध संवर की महिमा को जाना नहीं।
निर्जरा से रहा दूर ही सर्वदा॥
घातिया कर्म डरते हैं जिस ध्यान से।
ध्यान पाया नहीं मैंने वह भी कदा॥
धर्म की धूप मेरे लिये श्रेष्ठ है।
कर्म ईंधन जलाने में सक्षम सदा॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव भोगों से उर में उदासी नहीं।
आज तक भी न भयभीत संसार से॥
पाप के फल के भय से ही त्यागा उन्हें।
किन्तु अभिप्राय रत है सुखाभास से॥
मूढ़ किंपाक फल जान अमृतमई।
खा रहा हूँ अनादि से अब तक अरे॥
भाव-द्रव्य मरण में ही मैं लीन हूँ।
मोक्षफल अपने ऑचल में कैसे धरे॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प आकाश के सम जगा जब विराग।
बिना समकित व्रतों को भी धारण किया॥

अर्घ्य लाया कषायों के ही खोजकर।
पुण्य भावों को ही संग मैंने लिया॥
अब समय है अनर्घ्य सुपद प्राप्ति का।
दूर भवरोग होगा सदा के लिये॥
अपने घर में ही सीमित रहूँगा अंगर।
सिद्ध हो जाऊँगा सर्वदा के लिये॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

जो अनादि से व्यक्त नहीं था त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक भाव।
वह युगादि में किया प्रकाशित वन्दन ऋषभ जिनेश्वर राव॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान ऋषभनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिसने जीत लिया त्रिभुवन को मोह शत्रु है प्रबल महान।
उसे जीतकर शिवपद पाया वन्दन अजितनाथ भगवान॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान अजितनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

काललब्धि बिन सदा असम्भव निज सन्मुखता का पुरुषार्थ।
सम्भव जिन ने सम्भव कर निज काललब्धि में पाया अर्थ॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान सम्भवनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिभुवन जिनके चरणों का अभिनन्दन करता तीनों काल।
वे स्वभाव का अभिनन्दन कर पहुँचे शिवपुर में तत्काल॥ ४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान अभिनन्दननाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज आश्रय से ही सुख होता यही सुमति जिन बतलाते।
सुमतिनाथ प्रभु की पूजन कर भव्य जीव शिव-सुख पाते ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान सुमतिनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पद्मप्रभ के पद पंकज की सौरभ से सुरभित त्रिभुवन।
गुण अनन्त के सुमनों से शोभित श्री जिनवर का उपवन ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान प्रद्मप्रभुतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सुपार्श्व के शुभ सु-पार्श्व में जिनकी परिणति करे विराम।
वे पाते हैं गुण अनन्त से भूषित, सिद्ध सदन अभिराम ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान सुपार्श्वनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चारु चन्द्रसम सदा सुशीतल, चेतन चन्द्रप्रभ जिनराज।
गुण अनन्त की कला विभूषित प्रभु ने पाया निजपद राज ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान चन्द्रप्रभतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पदन्तसम गुण आवलि से सदा सुशोभित हैं भगवान।
मोक्षमार्ग की सुविधि बताकर भविजन का करते कल्याण ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान सुविधिनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्द्रकिरण सम 'शीतल' वचनों से हरते जग का आताप।
स्याद्वादमय दिव्यध्वनि से मोक्षमार्ग बतलाते आप ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान शीतलनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिभुवन के श्रेयस्कर हैं श्रेयाँसनाथ जिनवर गुणगान।
निज स्वभाव ही परमश्रेय का केन्द्र बिन्दु कहते भगवान ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान श्रेयाँसनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शत इन्द्रों से पूजित जग में वासुपूज्य जिनराज महान।
स्वाश्रित परिणति द्वारा पूजित पंचमभाव गुणों की खान ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान वासुपूज्यतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल भावों से भूषित हैं जिनवर विमलनाथ भगवान।
राग-द्वेष मल का क्षय करके पाया सौख्य अनन्त महान ॥ १३ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान विमलनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण अनन्तपति की महिमा से मोहित है यह त्रिभुवन आज।
जिन अनन्त को वन्दन करके पाऊँ शिवपुर का साम्राज्य ॥ १४ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान अनन्तनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वस्तु स्वभाव धर्मधारक हैं धर्म धुरन्धर नाथ महान।
ध्रुव की धुनमय धर्म प्रगटकर वन्दित धर्मनाथ भगवान ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान धर्मनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

राग रूप अंगारों द्वारा दहक रहा जग का परिणाम।
किन्तु शान्तिमय निज परिणति से शोभित शान्तिनाथ भगवान ॥ १६ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान शान्तिनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुन्थु आदि जीवों की भी, रक्षा का देते जो उपदेश।
स्वचतुष्टय में सदा सुरक्षित कुन्थुनाथ जिनवर परमेश ॥ १७ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान कुन्थुनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचेन्द्रिय विषयों से सुख की अभिलाषा जिनकी है अस्त ।
धन्य धन्य अरनाथ जिनेश्वर राग- द्वेष अरि किए परास्त ॥ १८ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान अरहनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मोह-मल्ल पर विजय प्राप्त कर जो हैं त्रिभुवन में विख्यात ।
मल्लिनाथ जिन समवशरण में सदा सुशोभित हैं दिनरात ॥ १९ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान मल्लिनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

तीन कषाय चौकड़ी जयकर मुनि-सु-व्रत के धारी हैं ।
वन्दन जिनवर मुनिसुव्रत जो भविजन को हितकारी हैं ॥ २० ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान मुनिसुव्रतनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

नमि जिनवर ने निज में नमकर पाया केवलज्ञान महान ।
मन-वच-तन से करूँ नमन सर्वज्ञ जिनेश्वर हैं गुणगान ॥ २१ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान नमिनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

धर्मधुरा के धारक जिनवर धर्मतीर्थ रथ संचालक ।
नेमिनाथ जिनराज वचन नित भव्यजनों के हैं पालक ॥ २२ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान नेमिनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जो शरणागत भव्यजनों को कर लेते हैं आप समान ।
ऐसे अनुपम अद्वितीय पारस हैं पार्श्वनाथ भगवान ॥ २३ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान पार्श्वनाथतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महावीर सन्मति के धारक वीर और अतिवीर महान।
चरणकमल का अभिनन्दन है वन्दन वर्धमान भगवान ॥ २४ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान महावीरतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

गीतिका

मोक्षमारग के प्रवर्तक, भरत में चौबीस जिन।
त्याग कर चौबीस परिग्रह, हुए त्रिभुवन ईश जिन ॥
आत्मदर्शन से लही दर्शन-विशुद्धि आपने।
भावना षोडशकरण भा प्रकृति बाँधी आपने ॥
किन्तु निज चैतन्य, बन्धन-मुक्ति से भी पार है।
अतः तीर्थंकर प्रकृति क्षय कर हुए भव पार हैं ॥
अर्घ्य अर्पित है जिनेश्वर, पाद-पद्यों में नमन।
पद अनर्घ्य लहूँ प्रभो ! चौबीस जिनवर को नमन ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमान चतुर्विंशतितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

सोलह कारण भावना परम सौख्य शिवदाय।
तीर्थंकर पद प्राप्ति का केवल यही उपाय ॥

ताटंक

सोलहकारण भव्य भावनाओं के फल से तीर्थंकर।
होते हैं होते आये हैं, आगे भी होंगे जिनवर ॥
चिरमिथ्यात्व विनाशक दर्शविशुद्धि भावना शिवदायी।
करती नाश मान का पावन विनय भावना शिवदायी ॥

महाशील के बल से होता आत्मब्रह्म में सदा निवास।
सम्यक् ज्ञान भावना करती निजस्वरूप का ही विश्वास॥

जब संवेग भावना होती हो जाता है स्व-पर विवेक।
त्याग भावना से होता है अंतरंग में हर्षातिरेक॥

उत्तम तप भावना अनिच्छुक भाव सदा प्रदान करती।
साधु समाधि भावना उर में निर्मल ध्यान दान करती॥

दुखी जनों की वैय्यावृत्ति महान पुण्य संचय करती।
अर्हद् भक्ति भावना पावन घाति कर्म सब क्षय करती॥

आचार्यों की भक्ति परम मंगलमय शांति प्रदायक है।
बहुश्रुत भक्ति जिनागम का अभ्यास परम सुखदायक है॥

प्रवचन भक्ति रहस्य दिव्य ध्वनि का सबको बतलाती है।
तब षट् आवश्यक की महिमा अंतरंग में आती है॥

आत्मधर्म की प्रभावना ही है सच्ची प्रभावना जान।
सब जीवों से वात्सल्य हो तब होते तीर्थेश महान॥

पूर्व भवों में ये सोलह भावना आपने भाकर के।
तीर्थंकर पद पाया स्वामी निज स्वभाव में आकर के॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

यह विधान कल्पद्रुम अति सुखकार है।
भुक्ति-मुक्ति दायक नित मंगलकार है॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिन पूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

* * *

17

श्री जिन सहस्त्रनाम पूजन

स्थापना

चान्द्रायण

श्री जिनेन्द्र के नाम अनन्तानन्त हैं।
तीन लोक से वन्दित महिमावन्त हैं॥
द्वादश सभा सहित जिनवर शोभायमान।
तीर्थंकर सर्वज्ञ जगत में हैं प्रधान॥

णमोत्थुणं करता है इन्द्र विनय सहित।
हो जाता है सर्व पाप रज से रहित॥
थक जाता है नाम सहस्त्र उच्चार कर।
विनती करता भाव सहित जयकार कर॥

तत्क्षण होता है उपदेश जिनेश का।
भव्य जीव गुण गाते हैं विश्वेश का॥
नाम अनन्तानन्त न वर्णन कर सकूँ।
भक्ति भाव से विवश मात्र वन्दन करूँ॥

भक्ति आज्ञा मान नाम थोड़े कहूँ।
सतत नाम जप अनुभव सागर में बहूँ॥
अरहंताणं भगवन्ताणं नित जपूँ।
सिद्धाणं, बुद्धाणं जप दृढ़ तप तपूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहस्त्रनामविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहस्त्रनामविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहस्त्रनामविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

हरिगीतिका

काल अब तक बहुत बीता त्रिविध रोग न क्षय हुआ।
नाथ यह मिथ्यात्व ग्रह अब तक न मुझसे जय हुआ॥
नीर निर्मल निजाश्रित पी आतमा में ही रहूँ।
पराश्रय को छोड़कर निज आत्म सागर मैं बहूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहस्रनामविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रूर भव ज्वर दे रहा क्षय रोग की पीड़ा मुझे।
आज तक भायी प्रभो संसार की क्रीड़ा मुझे॥
परम अन्तस्तत्व सुरभित चन्दनं पाऊँ प्रभो।
गुण अनन्तानन्तमय निज शांत छवि ध्याऊँ विभो॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्य विराजितसहस्रनामविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय संसारताप - विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

दुखःमयी विषपान करके मरण पाया बारबार।
आज तक संसार पर्वत कर सका मैं नहीं क्षार॥
भव विपिन में वृक्ष विषमय दुःखों के हैं सर्वथा।
चैतन्य नन्दनवन सुशोभित आत्म वैभव से सदा॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहस्रनामविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अक्षयपद - प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

आज तक निष्काम भावों से नहीं मैं जुड़ सका।
कंदर्प दर्प विकार मकरध्वजी से ना मुड़ सका॥
आत्मा कामादि जन्य विकार से होता मलीन।
वासना पर विजय हो तो फिर न होता कभी क्षीण॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहस्रनामविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय कामबाण - ...ष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

विषमयी भोजन विभावी बहुत खाया आज तक।
निराहारी आत्मा में रह न पाया आज तक॥
चैतन्य के व्यञ्जन अतीन्द्रिय भोग कर चित् लोक में।
पान कर निज आत्म रस का अब रहूँ ध्रुव लोक में॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहस्रनामविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पर्याय दृष्टि जीव को संसार का नेता कहा।
द्रव्य दृष्टि जीव को ही कर्म अरि जेता कहा॥
आत्मदीप प्रकाश से होता सुशोभित मोक्ष पथ।
किन्तु मिथ्यातम ग्रसित का चले नहिं चैतन्य रथ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहस्रनामविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म पर्वत भेदने की कला का मैं करूँ भान।
दहन कर शुभ-अशुभ परिणति अभी लूँ कैवल्यज्ञान॥
कर्म आठों नष्ट करने का सुदृढ़ संकल्प ले।
मुक्ति के पथ पर बढ़ूँगा ध्यान ध्रुव अविकल्प ले॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहस्रनामविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

उपयोग शुभ का निमित्त है मंगलमयी जिन आयतन।
उपयोग अशुभ निमित्त हैं यह षट् प्रकार अनायतन॥
मुक्ति फल की चाह है तो राग आग बुझा अभी।
शीघ्र अपनी आत्मा को मुक्ति फल देते सभी॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहस्रनामविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वयं तो आनन्द का है धाम फिर भी है दुःखी।
आयतन निज से बहिर्मुख नहीं अणुभर भी सुखी॥

शुद्ध समकित अंग आठों का बनाऊँ अर्घ्य अब।
साद्यनन्तानन्त शाश्वत देख रूप अनर्घ्य अब॥
नयपक्ष से अतिक्रान्त होकर लखूँ निज चैतन्य को।
कैवल्य-रवि करता प्रकाशित आत्म को अरु अन्य को॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहस्रनामविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्य-पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

जय जिनेन्द्र शतक सम्बन्धी अर्घ्य

चान्द्रायण

जय जिनेन्द्र जिन शतक प्रथम वन्दन करूँ।
अनुपम महिमाधारी पद अर्चन करूँ॥
नाम सहस्र जपूँ जिनेन्द्र हर्षाय के।
भक्ति भाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ गाय के॥१॥

ॐ ह्रीं श्री जयजिनेन्द्रशतकेनस्तुत्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्माध्यक्ष शतक सम्बन्धी अर्घ्य

धर्माध्यक्ष शतक दूजा वन्दन करूँ।
धर्मचक्रपति चरणाम्बुज अर्पण करूँ॥
नाम सहस्र जपूँ जिनेन्द्र हर्षाय के।
भक्ति भाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ गाय के॥२॥

ॐ ह्रीं श्री धर्माध्यक्षशतकेनस्तुत्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परमानन्द शतक सम्बन्धी अर्घ्य

परमानन्द शतक निःशंकित पूज लूँ।
निष्कलंक गुण ज्ञान मुक्ति दूज लूँ॥

नाम सहस्त्र जपूँ जिनेन्द्र हर्षाय के।
भक्ति भाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ गाय के ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री परमानन्दशतकेनस्तुत्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वीतराग शतक सम्बन्धी अर्घ्य

वीतराग जिन शतक नमन कर भाव से।
विश्व चक्षु को वन्दूँ शुद्ध स्वभाव से ॥
नाम सहस्त्र जपूँ जिनेन्द्र हर्षाय के।
भक्ति भाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ गाय के ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागशतकेन स्तुत्यमान तीर्थंकर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्ग्रंथनाथ शतक सम्बन्धी अर्घ्य

प्रभु निर्ग्रंथनाथ जिन शतक निरामयी।
नित्यानंद निराश्रय निर्मल भवजयी ॥
नाम सहस्त्र जपूँ जिनेन्द्र हर्षाय के।
भक्ति भाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ गाय के ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्री निर्ग्रंथनाथशतकेनस्तुत्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तिनिष्ठ शतक सम्बन्धी अर्घ्य

शांतिनिष्ठ जिन शतक महामंगलस्वरूप।
शील सिंधु शासन कल्याण विराटरूप ॥
नाम सहस्त्र जपूँ जिनेन्द्र हर्षाय के।
भक्ति भाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ गाय के ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्री शांतिनिष्ठशतकेनस्तुत्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य शतक सम्बन्धी अर्घ्य

चिति चैतन्य शतक चिन्तामणि को नमन।
चतुर शीति लक्षण जिन कुंजर सुख सदन॥
नाम सहस्र जपूँ जिनेन्द्र हर्षाय के।
भक्ति भाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ गाय के॥७॥

ॐ ह्रीं श्री चैतन्यशतकेन स्तुत्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वज्ञ शतक सम्बन्धी अर्घ्य

जय सर्वज्ञ शतक सादर वन्दन करूँ।
भू र्भुवः स्वर स्वामी पद अर्चन करूँ॥
नाम सहस्र जपूँ जिनेन्द्र हर्षाय के।
भक्ति भाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ गाय के॥८॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वज्ञशतकेन स्तुत्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार शतक सम्बन्धी अर्घ्य

समयसार जिन शतक सुनय शुद्धाभ है।
सर्व क्लेश हर सुखद सुहित स्वर्णाभ है॥
नाम सहस्र जपूँ जिनेन्द्र हर्षाय के।
भक्ति भाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ गाय के॥९॥

ॐ ह्रीं श्री समयसारशतकेन स्तुत्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाण शतक

जय निर्वाणशतक महेश मंगलमयं।
महाध्यानपति भव्य वन्द्य मृत्युंजयं॥

नाम सहस्त्र जपूँ जिनेन्द्र हर्षाय के।
भक्ति भाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ गाय के ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं श्री निर्वाणशतकेन स्तुत्यमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

चौपाई

जगज्जयी जय त्रिपुरान्तक जय, अमित ज्योति जय विजितान्तक जय।
विश्वज्योति जय विपुलज्योति जय, जय विश्वेश्वर विमलज्योतिजय ॥
गुण अनन्त प्रभु निज प्रगटाऊँ, तुम सम महिमा मैं भी पाऊँ।
महाअर्घ्य मैं करूँ समर्पण, तन-मन-धन चरणों में अर्पण ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहस्त्रनामविभूषित तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

पीयूषनिर्झर

सम्यक्त्वपूर्वक निज ज्ञान पाया, निज ज्ञान पूर्वक निज ध्यान पाया।
निज भाव तरणी संसार हरणी, निर्मल यथाख्यात चारित्र धरणी ॥
ध्रुव ध्यान पूर्वक निज मैं रहूँगा शुद्धात्म सरिता में ही बहूँगा।
जिन नाम थोड़े से मैं कहूँगा, अपने स्वभावों में ही रहूँगा ॥

वीरछन्द

आदि जिनेश्वर आदि तीर्थंकर आदि सृष्टिकृत आदि जिनेश।
अजित अजोष अजात अजन्मा आज्ञा सिद्ध अगूढ़ अशेष ॥
संभव सहज ज्योति सलिलात्मक सद्योजात सर्व वद्येश।
अभिनंदन अभ्यग्न अभोगी आत्मरूप अधि गुप्त अद्वेष ॥
सुमति सिद्धमार्गस्थ सिद्धिशासन सर्वत्रग संयमसार।
पद्म पद्मप्रभ पद्मनाथ परमेश्वर परमनित्य भंडार ॥

साधु सुपार्श्व सुनिष्ठित सुश्रुत सम्प्रतिनाथ सर्वदर्शन।
चंद्र चंद्रप्रभ चंद्रनाथ चेतयिता चेतन चतुरानन॥
पुष्पदन्त पुरुषोत्तम पुष्कल प्रथमोंकार रूप प्रिय प्राण।
शीतल शीतलनाथ शील शुद्धाभ शील संचय शिवयान॥
श्रेयांस श्रेयस् श्रिय श्रुतपति श्रायसोक्ति श्रुतजल श्रीमान।
वासुपूज्य वागीश्वर वरप्रद विष्टरश्रवा विश्वकल्याण॥
विमल विमलप्रभ विमलनाथ विमलेश विवेक व्यक्त शासन।
अतुल अनंत गुणाब्धि आर्जव अगणितनाम अनादि निंधन॥
धर्म धर्मपति धर्मतीर्थ युत धर्मतीर्थकर्ता धाता।
शांतिनाथ शिवकरण शिलातन शाश्वतनाथ शांतिदाता॥
कुन्थु कनत्कांचन सन्निभ कर्मण्य कौतुकी करुणाधाम।
अर अपूर्व देवोपदेष्टा अमित प्रभाव अमंद अकाम॥
मल्लि महायति मल्लिनाथ मुनि ज्येष्ठ मुक्तिप्रिय मर्त्य जयी।
मुनिसुव्रत मुनिशुद्ध महाजय महाशिष्ट मोहारिजयी॥
नमि नमिनाथ नित्य निपुणाश्रित निर्ग्रंथ निगुणी निर्द्वन्द्व।
नेमिनाथ नेमीश्वर निर्मद नग निष्कामी नित्यानंद॥
पार्श्वनाथ प्रभु पुण्या-पुण्यनिरोधक पूर्ण परमध्यानी।
महावीर मधवार्चित मनप्रिय महाकृपालू महाज्ञानी॥
इत्यादिक नामों से करते संस्तुति इंद्र सहर्ष महान।
नाम अनंत मात्र जपते हैं एक सहस्र आठ शुभनाम॥
शक्ति नहीं है किन्तु भक्ति है अतः लिए हैं प्रभु कुछ नाम।
नाम सहस्र अर्घ्य अर्पण कर पाऊँ शिवपुर में विश्राम॥

दोहा

जिनवर नाम अनंत है, अगणित अगम अपार।
पूर्ण अर्घ्य अर्पित करूँ, पाऊँ पद अविकार॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहस्रनामविभूषित- तीर्थंकरजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

श्री जिन सहस्रनाम पूजन की हर्ष से।
मुक्तिमार्ग पाऊँगा ज्ञानोत्कर्ष से॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पांजली क्षिपेत

* * *

भजन

आओ रे आओ रे ज्ञानानन्द की डगरिया
तुम आओ रे आओ, गुण गाओ रे गाओ
चेतन रसिया आनन्द रसिया॥ टेक॥
बड़ा अचम्भा होता है, क्यों अपने से अनजान रे।
पर्यायों के पार देख ले, आप स्वयं भगवान रे॥ १॥
दर्शन-ज्ञान स्वभाव में, नहीं ज्ञेय का लेश रे।
निज में निज को जानकर, तजो ज्ञेय का वेश रे॥ २॥
मैं ज्ञायक मैं ज्ञान हूँ, मैं ध्याता मैं ध्येय रे।
ध्यान ध्येय में लीन हो, निज ही निज का ज्ञेय है॥ ३॥

18

दिव्यध्वनि पूजन

स्थापना

ताटंक

निकट भव्य जीवों को दिव्यध्वनि है परमज्ञान दाता।
जिन श्रुतधारिणी चमत्कारिणी दयामयी भवदुःखत्राता॥
तीर्थंकर दिव्यध्वनि अम्बे जिनवाणी जगकल्याणी।
द्वादश अंग पूर्व चौदह से भूषित है माँ सुखदानी॥
हैं चारों अनुयोग ज्ञानमय परमसौख्य इसके भण्डार।
जो हृदयंगम कर लेता है वह जाता भवसागर पार॥
मंगलकरणी भव अघहरणी दुखदधि तरणी हे माता।
स्वर्गों के सुख नहीं चाहिए मुझको दो शाश्वत साता॥
जीव चतुर्गति दुःख से दुखिया इसका कष्ट मिटाओ माँ।
रागादिक हिंसादि भाव सब पल में दूर हटाओ माँ॥
इसीलिए पूजन करता हूँ मन-वच-तन सब करके शुद्ध।
निर्मल स्वाध्याय पद्धति से हो जाऊँ मैं आगम बुद्ध॥

दोहा

अनेकान्तमय मूर्ति ही सरस्वती का रूप।
जिसमें व्याप्त रहे सदा निज चेतन चिद्रूप॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितदिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितदिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितदिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

पद्धरि

स्वाध्याय भेद लो पांच जान, कल्याण नीर मंगल महान।
जिनध्वनि इसमें पावन महान, अनुयोग चार का व्याख्यान॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितदिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य गन्ध से व्याप्त जान, जिन आगम सुरभित है महान।
कल्याण सभी का करता है, वाचना अंग दुःख हरता है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितदिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय संसार-तापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

पृच्छना अंग है स्वाध्याय, चैतन्य भाव निज को सुहाय।
सन्मार्ग शुद्ध का है दर्शक, यह भव्य जीव को मनमोहक॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितदिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

अनुप्रेक्षा बार-बार चिन्तन, है भेद-ज्ञान का दिग्दर्शन।
ये अप्पा ही परमप्पा है, सिद्धों समान निज अप्पा है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितदिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्णीत तत्त्व को धारण कर, पुनि-पुनि अध्ययन कर चिन्तन कर।
आम्नाय भवोदधि तारक है, रागादि भाव संहारक है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितदिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्मोपदेश है अंगश्रेष्ठ, निज-पर हितकारी परम ज्येष्ठ।
सर्वज्ञ ज्ञान अनुसारी है, परमात्म जीव अविकारी है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितदिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

है महिमामंडित स्वाध्याय, यह अविनाशी शिवसौख्यदाय।
नव तत्वों का इसमें वर्णन, फिर भेद अनेकों अनन्त गिन॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितदिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भटकें न जगत की माया में, आयें आगम की छाया में।
कल्याण हमारा निश्चित है, फल मोक्ष सहज ही शाश्वत है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितदिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वाध्याय महापुरुषार्थ जान, जगती में है सबसे महान।
जो स्वाध्याय नित करते हैं, पदवी अनर्घ्य वे वरते हैं॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितदिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावलि

प्रथमानुयोग सम्बन्धी अर्घ्य

मत्त सवैया

प्रथमानुयोग निर्मल शीतल जल धारा सम उज्ज्वल पवित्र।
हैं त्रेषठ पुरुष शलाका के पुण्यानुबंध वाले चरित्र॥
ये सभी मोक्ष इक दिन जाते यह निश्चित सर्व विवादजयी।
है पुण्य-पाप फल की कथनी भव्यों को अति वैराग्यमयी॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितप्रथमानुयोगगर्भिता-दिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकर -जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

करणानुयोग सम्बन्धी अर्घ्य

करणानुयोग है सूक्ष्म तुला परिणाम जीव का मापक है।
त्रिभुवन की ऊर्ध्व अधो मध्य रचना का यह परिचायक है॥

परिणामों के अनुसार बंध कब कब कैसे कितना होता।
फिर कैसे यह क्षय होता है शुभ कथन सर्व इसमें होता ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितकरणानुयोगगर्भित- दिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चरणानुयोग सम्बन्धी अर्घ्य

चरणानुयोग चाञ्चल्य रहित अक्षय चारित्र शक्तिद्योतक।
है साम्यभाव चारित्र श्रेष्ठ यह द्वादश व्रत का उद्योतक॥
मुनि श्रावक के आचार शुद्ध का वर्णन है इसमें महान।
जो शुद्धाचारी होते हैं वे ही पाते हैं मुक्तियान ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितचरणानुयोगगर्भित-दिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकर - जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्यानुयोग सम्बन्धी अर्घ्य

द्रव्यानुयोग है भेदज्ञान की पावन परम कलाभूषित।
विज्ञान ज्ञानमय आत्मपुष्प पर से न हुआ किंचित दूषित॥
सम्यक् अध्यात्म सौख्य सागर अनुभव रस का है महा स्रोत।
सच्चिदानंद निर्मलानन्द है आत्मज्ञान से ओत-प्रोत ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितद्रव्यानुयोगगर्भित-दिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वादशांग सम्बन्धी अर्घ्य

दोहा

स्याद्वाद से सिद्ध हो, वस्तुतत्त्व अविवाद।
द्वादशांग के नाम सुन, होता उर आल्हाद॥

ताटंक

पहिला आचारांग आचरण मुनियों का जिसमें वर्णन।
दूजा सूत्रकृतांग विनयमय शुद्ध ज्ञान का पूर्ण कथन॥

तीजा स्थानांग भूमि पर देख शोध के धरो चरण।
चौथा समवायांग क्षेत्र आदिक भावों का दिव्य कथन॥
व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग पांचवा प्रश्नोत्तर विज्ञान सघन।
षष्टम ज्ञातृधर्मांग कथाँग सुधर्म कथाओं का वर्णन॥
उपासकाध्ययनांग सातवां श्रावक का आचरण चरण।
अन्तः कृतदशांग आठवां अन्तःकृत केवली कथन॥
नवमा अनुत्तरांग तीर्थ प्रति गये अनुत्तर जो मुनिवर।
दशम प्रश्न व्याकरण अंग में कथन व्याकरण प्रश्नोत्तर॥
हैं विपाक सूत्रांग ग्यारवां पुण्य-पाप फल का वर्णन।
दृष्टिवाद बारहवाँ मिथ्यातम नाशक सम्यग्दर्शन॥
इन द्वादश अंगों के पद हैं इकशत द्वादश कोटि तथा।
लाख तिरासी सहस्र अठावन और पांच सुन हरो व्यथा॥ ५॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितद्वादशांगगर्भित-दिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौदह पूर्व सम्बन्धी अर्घ्य

वीर छन्द

दृष्टिवाद के भेद पांच हैं पहला है परिकर्म महान।
दूजा सूत्र तृतीय अनुयोग चतुर्थम भेद पूर्वगत जान॥
पंचम भेद चूलिका जानो धन्य-धन्य श्रुत-ज्ञान प्रधान।
चौदह भेद पूर्वगत के हैं और भेद भी अन्य महान॥
दृष्टिवाद के पाँचों भेदों की संख्या भी लो कुल जान।
एक अरब वसुकोटि साठ हैं लाख सहस्र सु बीस प्रमाण॥

जिन आगम का स्वाध्याय कर भेदज्ञान प्रगटाऊँगा।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द रस पी, मिथ्या तिमिर नशाऊँगा ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितचौदहपूर्वगर्भित-दिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

ऋषभदेव से महावीर तक हुए केवली अनगिनती।
श्रुत केवलि भी हुए असंख्यों सबकी करता हूँ विनती ॥
वर्तमान हैं ढाई दीप में त्रयकम नौ करोड़ मुनिराज।
भाव-द्रव्य संयम विचरण करते ध्यान लीन ऋषिराज ॥
छः महीना अरु आठ समय में छह सौ आठ मुक्ति पाते।
ना जायें तो अंतिम आठ समय में तो निश्चित जाते ॥
प्रथम समय में बत्तीस जाते दूजे जाते अड़तालीस।
तीजे साठ चतुर्थ बहत्तर पंचम जाते चौरासी ॥
षष्टम में छियानवें मुक्त हों, सप्तम एक शतक अरुआठ।
अष्टम एक शतक वसु जाते होते मुक्तिपुरी सम्राट ॥
दिव्य महाभाषा अष्टादश में होता प्रभु का उपदेश।
सप्त शतक लघु भाषाओं में मिलता जिनवर का सन्देश ॥
किन्तु दिव्यध्वनि खिरती है सर्वांग निरन्तर महिमामय।
सभी जीव अपनी-अपनी भाषा में समझ रहे निर्भय ॥
जो सर्वज्ञ ज्ञान में झलका उसको कहता है श्रुतज्ञान।
पर्यायें क्रमबद्ध सदा यह दृढ़ निश्चित कर लो विद्वान ॥

दोहा

दिव्य ध्वनि का लाभ ले साधूँ अपना काज।
महा अर्घ्य अर्पण करूँ पाऊँ निज पद राज ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितद्वादशांगगर्भित-दिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वीरछन्द

श्री जिन दिव्यध्वनि की महिमा है त्रिभुवन में अपरंपार।
पाप ताप संताप विनाशक सकल जगत को मंगलकार॥
जो भी हृदयंगम कर लेता भेदज्ञान निधि पा लेता।
भेदज्ञान शक्ति के द्वारा हो जाता है भव के पार॥
जितने भी भगवंत हुए सबने पायी इसकी छाया।
इसके बतलाए पथ पर चल पाया सम्यक् ज्ञान अपार॥
फिर सम्यक् चारित्र प्राप्त कर यथाख्यात वैभव पाता।
गुणस्थान तेरहवाँ पाकर हुए देव अरहंत उदार॥
बारह अंग पूर्व चौदह का श्रुतकेवली ज्ञान पाते।
केवलज्ञानी हो जाते हैं फिर करते सबका उपकार॥
दिव्यध्वनि ही जिनवाणी है दयामयी माँ कल्याग्री।
दुग्धपान जो कर लेता है पाता सिद्ध स्वपद सुखकार॥
मैं भी माता जिनवाणी को वंदन कर समकित पाऊँ।
रत्नत्रयमय शक्ति प्राप्तकर नाश करूँ दुखमय संसार॥
हे माँ मुझको ऐसा बल दो पाऊँ भेदज्ञान विज्ञान।
निज पुरुषार्थ जगाऊँ माता करूँ आत्मा का उद्धार॥
स्याद्वाद की लहरें जिसमें पूर्ण ज्ञान गंगा पाऊँ।
उसमें ही अवगाहन करके करूँ आत्मा का सत्कार॥
मंगलमयी दिव्यध्वनि पावन ही सर्वोत्तम मंगल है।
माता जिनवाणी ही केवल परमोत्तम सुख की आचार॥

दोहा

हे जिनपूजन के रसिक शोधो श्रुत का सार।
मोक्ष महल में आइये प्रिय चैतन्यकुमार॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितद्वादशांगगर्भित-दिव्यध्वनिविभूषित श्रीतीर्थंकर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

तीर्थंकर की दिव्यध्वनि मंगलमयी।
अन्तरंग में उतरे तो अरि-रज जयी॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ विभो॥

पुष्पांजलि क्षिपेत्

* * *

भजन

देख तेरी पर्याय की हालत क्या हो गई भगवान।
तू तो गुण अनन्त की खान।
चिदानन्द चैतन्यराज क्यों अपने से अनजान।
तुझमें वैभव भरा महान॥ टेक॥

बड़ा पुण्य अवसर यह आया, श्री जिनवर का दर्शन पाया।
जिनने निज को निज में ध्याया, शाश्वत सुखमय वैभव पाया॥
इसीलिये श्री जिन कहते हैं, करलो भेद-विज्ञान॥ १॥

तन चेतन को भिन्न पिछानों, रत्नत्रय की महिमा जानो।
निज को निज पर को पर जानो, राग भाव से मुक्ति मानो॥
सप्त तत्त्व की यही प्रतीति देगी मुक्ति महान॥ २॥

19

गणधर पूजन

स्थापना

वीरछन्द

वर्तमान जिन चौबीसी के वृषभसेन आदिक गौतम।
चौदह सौ उनसठ गणधर हैं शिवसुख पाने में सक्षम॥
दिव्य ध्वनि को झेल गूंथते हैं अन्तर्मुहूर्त में सार।
फिर व्याख्या करते हैं गणधर मंगलमयी भव्य हितकार॥
मोक्ष प्राप्ति इस ही भव में कर होते भव समुद्र के पार।
श्री सर्वज्ञ जिनेश्वर तीर्थंकर वाणी का ले आधार॥
भाव सहित सब की पूजन कर करूँ निजातम का कल्याण।
नाथ आपके बतलाये पथ पर चल मैं पाऊँ निर्वाण॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

दिग्वध्

मिथ्यात्व भावना को अब तो तज दूँ पूरी।
इसके कारण बढ़ती निज शिव पथ से दूरी॥
गुण रत्नत्रयदायक निर्मल परिणति कर दो।
यदि दोष रहे मुझमें तो प्रायश्चित वर दो॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

है भेदज्ञान दाता परमागम की भाषा।
है मोक्षप्राप्ति की ही अन्तर में अभिलाषा॥

'जीवों उवओगमओ', से मैं सदैव सज्जित।
शुद्धोपयोग तो है परभावों से वज्जित॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

जो धर्म वीतरागी वह धर्म सदा मेरा।
परिपूर्ण ज्ञान रवि है शुद्धातम का चेरा॥
'चारित्रं खुल धम्मो' मैं पालन करूँ सदा।
अक्षय अखण्ड निज पद पाऊँ शाश्वत सुखदा॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

घन घाति कर्म नाशक मेरा स्वरूप निश्चित।
परमागम ही करता चेतन स्वभाव इंगित॥
षट कारक की रक्षा है धर्म अहिंसा मय।
सबको समान समझूँ सिद्धों के सम चिन्मय॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रागादि दोष तजकर मैं सत्यधर्म पालूँ।
अपने स्वभाव को ही परिणति में अपना लूँ॥
पर का न ग्रहण करता मैं पर से भिन्न सदा।
अस्तेय स्वभावी हूँ परभाव जान दुखदा॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भव भोग वासनायें स्वामी पूरी त्यागूँ।
ले ब्रह्मचर्य दीपक अब्रह्म तिमिर नाशूँ॥
इच्छाओं से विरहित अपरिग्रह निश्चित हो।
संग्रह का भाव तजूँ मूर्छा न कदाचित हो॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

है दर्शन ज्ञान चरित रत्नत्रय छवि मेरी।
मैं ही परमातम हूँ परिणति मेरी चेरी॥
कृत कारित कारयिता अनुमन्ता भी न कहीं।
पर से क्या नाता है निज गुण की पास मही॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

रागादि भाव स्वामी शुभ अशुभ सर्व दुखमय।
है शुद्धभाव ही तो मेरा महान सुखमय॥
परिणामों से बन्धन परिणामों से मुक्ति।
अब मोक्ष सुफल पाऊँ ऐसी दे दो युक्ति॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञायक के आश्रय से रत्नत्रय प्रगटाऊँ।
निर्ग्रन्थ आप सम बन पदवी अनर्घ्य पाऊँ॥
प्रभु आप कृपा से ही दिव्यध्वनि पाई है।
अब मेरी प्रज्ञा भी शिवपथ पर आई है॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

दोहा

तीर्थंकर चौबीस के गणधर ऋषि भगवान।
नाम मुख्य गणधर कहूँ संख्या शास्त्र प्रमाण॥
चौदह सौ उनसठ ऋषि कहें दिव्यध्वनि सार।
निज आतम अनुभूति ही तीन भुवन में सार॥

वीरछन्द

ऋषभ देव चौरासी गणधर वृषभसेन ऋषि मुख्य महान।
चार ज्ञान धारी गणधर ऋषी मुनियों में हैं श्रेष्ठ प्रधान ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेवतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अजितनाथ के नब्बे गणधर, केसरिसेन मुख्य गुणखान।
मति श्रुत अवधि मनः पर्यय के धारी है ऋषिराज महान ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

संभव जिन एक सौ पाँच हैं चारुदत्त हैं मुख्य प्रधान।
दिव्यध्वनि तत्काल झेलते उपादान योग्यता महान ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अभिनन्दन एक सौ तीन हैं वज्रचँवर ऋषि मुख्य महान।
रचते हैं अन्तर्मुहूर्त में दिव्यध्वनि का सार प्रधान ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दनतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

सुमतिनाथ के इकशत सोलह मुख्य वज्र गणधर भगवान।
दिव्यध्वनि की पूर्ण व्याख्या करने में हैं चतुर सुजान ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पद्मप्रभ के इकशत ग्यारह ऋषिवर चमर मुख्य गुणवान।
दिव्यध्वनि सुन द्वादशांग की रचना करते महामहान ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचानवे सुपार्श्वनाथ के श्री बलदत्त मुख्य गुणखान।
दृष्टिवाद के पांचों भेदों का करते हैं कथन महान ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्द्रप्रभ के तेरानवे हैं श्री वैदर्भ मुख्य ऋषिनाथ।
शुद्ध आत्मा की महिमा पा स्वामी आप हुए भगवान ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पुष्पदन्त के अठ्टासी ऋषि मुख्य नाग गणधर गुणखान।
भेद-ज्ञान की सुविधि बतायी किया भव्यजन का कल्याण ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदन्ततीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

शीतल जिन के सत्तासी ऋषि मुख्य कुन्थु गणधर भगवान।
भेद-ज्ञान विज्ञान शक्ति से पाया सबने मोक्ष महान ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

श्रेयाँस जिनराज सतत्तर मुख्य धर्म गणधर भगवान।
लोकालोक जाननेवाला पाया तुमने केवलज्ञान ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयाँसनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

वासुपूज्यजिन के छ्यासठ हैं मन्दर गणधर मुख्य प्रधान।
तीर्थंकर की कृपा प्राप्त कर पाया सबने केवलज्ञान ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

विमलनाथ के पचपन गणधर जय ऋषिवर है मुख्य महान।
सम्यकज्ञान पूर्वक पाया है सम्यकचारित्र महान ॥ १३ ॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अनन्तनाथ प्रभु के पचास ऋषि मुख्य अरिष्ट परम गुणखान।
निरतिचार रत्नत्रय धारी महा मुनिश्वर हैं गुणवान ॥ १४ ॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

धर्मनाथ के तैतालिस हैं मुख्य सेन गणधर बलवान।
मोक्षमार्ग की व्याख्या करते देते रत्नत्रय का ज्ञान ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

शान्तिनाथ छत्तीस जानिये चक्रायुद्ध हैं मुख्य महान।
सब स्वकाल में मुक्त हो गये सारा जग गाता जयगान ॥ १६ ॥
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

कुन्थुनाथ पैंतीस महाऋषि मुख्य स्वयंभू ऋषि गुणवान।
द्वादशांग रचना करके भी करते निज आतम का ध्यान ॥ १७ ॥
ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अरहनाथ के तीस जानिये मुख्य कुम्भ मुनिवर भगवान।
करुणासागर दयासिन्धु अनुकम्पा के समुद्र भगवान ॥ १८ ॥
ॐ ह्रीं श्री अरहनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

मल्लिनाथ के अट्ठाइस हैं मुख्य विशाख महामुनि जान।
आत्मध्यान फल मोक्ष प्राप्तकर हो जाते हैं सिद्ध महान ॥ १९ ॥
ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

मुनिसुव्रत के अट्ठाइस हैं मुख्य मलिक गणधर मुनि ज्येष्ठ।
दिव्यध्वनि की व्याख्या करके कहते अनुभव रस है श्रेष्ठ ॥ २० ॥
ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रततीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

नमि जिन के सतरह गणधर ऋषि सुप्रभ गणधर मुख्य महान।
शुद्ध स्वानुभव की महिमा से मुनि ने पाया मोक्ष महान ॥ २१ ॥
ॐ ह्रीं श्री नमिनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

नेमिनाथ के ग्यारह गणधर मुख्य श्री वरदत्त महान।
नहीं पर-समय की इच्छा है स्वसमय का है लक्ष्य प्रधान ॥ २२ ॥
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पार्श्वनाथ के दस गणधर मुनि मुख्य स्वयंभू है ऋषिराज।
परम श्रेष्ठ भावलिंगी मुनि हुए मुनीश्वर निज हितकाज ॥ २३ ॥
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

महावीर के ग्यारह गणधर मुख्य श्री गौतम मुनिराज।
आत्म शक्ति से मुक्त हो गये सबने पाया निजपद राज ॥ २४ ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरतीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

महार्घ्य

हरिगीतिका

चौबीस जिन के गणधरों को भाव से वन्दन करूँ।
मनःपर्ययज्ञानधारी अहो अभिनन्दन करूँ ॥
यद्यपि क्षमोपशमज्ञान प्रगटा किन्तु नहीं अभिमान है।
कैवल्य सिन्धु समक्ष निज लघु बिन्दु का क्या मान है?
मनःपर्यय जानता पर के मनोगत भाव को।
ज्ञान वह किस काम का जाने न ज्ञान स्वभाव को?
ज्ञान की ही स्वच्छता में ज्ञेय झलकें सहज ही।
किन्तु पर को जानने की उन्हें अभिलाषा नहीं ॥
निज अनर्घ्य स्वभाव में रमते मुनीश्वर हैं सदा।
दिव्यध्वनिधर मुनिवरों को अर्घ्य अर्पित सर्वदा ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

वीरछन्द

पहन दिशा परिधान चल पड़े सरिता पुलिन विपिन वन में।
पर्वत शिखर सुहाया मुनि को आये अपने उपवन में ॥
निज परिणति ले आयी उनको पर परिणति के तज झगड़े।
मुनि भी उसके इंगित पर चल निज स्वभाव से तुरत जुड़े ॥
जुड़ते ही अपने स्वभाव से हुआ हृदय आनन्द महान।
शुद्ध ज्ञान घन वर्षा पायी होने लगे कर्म अवसान ॥
स्वार्णिम आभा मुलगुणों की अंजलि भरभर देते हैं।
उपदेशों से निमिष मात्र में कालुषता हर लेते हैं ॥

गया प्रमाद देश अपने को अब कषाय की बारी हैं।
मोहक्षीण कर चुके महामुनि चौकषाय संहारी हैं॥
मिली इन्हें सर्वज्ञ अवस्था मुक्ति पुरी का यान मिला।
सिद्ध स्वपद पाया पलभर में अन्तरंग परिपूर्ण खिला॥
पूर्ण अर्घ्य अर्पित करता हूँ सभी गणधरों को मैं आज।
भूत विद्य भावी गणधर सब पा लेते हैं सिद्ध समाज॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकराणां सर्वगणधरदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

तीर्थंकर के गणधर सब वन्दन करूँ।
कर्म प्रकृतियों के सारे बन्धन हरूँ॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ विभो॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत

भजन

भविक तुम वन्दहु मनधर भाव, जिन-प्रतिमा जिनवर सी कहिए।
जाके दरस परम पद प्रापति, अरु अनन्त शिव-सुख लहिए॥ टेक॥
निज-स्वभाव निरमल ह्वै निरखत, करम सकल अरि घट दहिए।
सिद्ध समान प्रगट इह थानक, निरख-निरख छवि उर गहिए॥ १॥
अष्ट कर्म-दल भंज प्रगट भई, चिन्मूरति मनु बन रहिए।
इह स्वभाव अपनो-पद निरखहु, जो अजरामर पद चहिए॥ २॥
त्रिभुवन मांहि अकृत्रिम कृत्रिम, वंदन नित-प्रति निरवहिए।
महा-पुण्य संयोग मिलत है, भैया जिन प्रतिमा सरदहिए॥ ३॥

20

सर्व ऋषीश्वर पूजन

स्थापना

वीरछन्द

तीर्थंकर के ऋषिराजों की पूजन करूँ हृदय से आज।
चौंसठ ऋद्धिधारि मुनिराजा तथा पूर्वधारी ऋषिराज॥
महामुनीश्वर शिक्षक और अवधिज्ञानी ऋषिवर महाराज।
महापूज्य केवली और विक्रिया ऋद्धिधारी यतिराज॥
ज्ञान मनःपर्यय के धारी वादी मुनि जयजय यतिराज।
तीर्थंकर सहमुक्त साधु अरु मुक्ति प्राप्त मुनिवर ऋषिराज॥
तथा अनुत्तर प्राप्त और कल्पादि प्राप्त भावी शिवराज।
भवसागर से वर्तमान में सिद्ध हो रहे जो मुनिराज॥
आगे जो भी सिद्ध बनेंगे वन्दनीय सब ही जिनराज।
चरणों में आया हूँ स्वामी केवल आत्मोन्नति के काज॥
विनय सहित वन्दन करता हूँ पूर्ण भक्ति से हे स्वामी।
उन पद चिन्हों पर चलकर प्रभु बन जाऊँ अन्तर्यामी॥
पूजन करने का आया है उत्तमभाव हृदय में नाथ।
गरिमामय दृशि ज्ञप्ति वृत्ति से हो जाऊँ मैं पूर्ण सनाथ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितसर्वऋषिराज समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितसर्वऋषिराज समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इतिस्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितसर्वऋषिराज समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

चान्द्रायण

शुद्ध भावमय नीर महा महिमामयी।
जन्मजरामय मृत्यु विनाशक भवजयी॥
ईर्यासमिति सावधानी से पालते।
चार हाथ भू शोध चरण द्वय धारते॥
तीर्थंकर के ऋषियों की पूजन करूँ।
जिनमुनि बनकर सकल कर्मबंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितसर्वऋषिभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

शुद्धभाव से गंधित चन्दन श्रेष्ठ है।
भवाताप हर शीतल गुणमय ज्येष्ठ है॥
भाषा समिति सुगंध हृदय में तोलते।
हितमित प्रिय वाणी ही मुख से बोलते॥
तीर्थंकर के ऋषियों की पूजन करूँ।
जिनमुनि बनकर सकल कर्मबंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितसर्वऋषिभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

शुद्ध-भाव वत् निर्मल अक्षत भावमय।
अक्षय पद के दाता शुद्ध स्वभावमय॥
अंतराय छ्यालीस दोष सब टालते।
यह अक्षत एषणा समिति जो पालते॥
तीर्थंकर के ऋषियों की पूजन करूँ।
जिनमुनि बनकर सकल कर्मबंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितसर्वऋषिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा

शुद्ध निजाश्रित भाव सुमन की गंध हो।
फिर न कभी शुभ-अशुभ कर्म का बंध हो॥

देख शोधकर वस्तु सदैव उठावते ।
किन्तु नहीं कर्तृत्त्व वासना धारते ॥
तीर्थंकर के ऋषियों की पूजन करूँ ।
जिनमुनि बनकर सकल कर्मबंधन हरूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितसर्वऋषिभ्यो कामबाणविध्वसंनाय पुष्पं नि. स्वाहा ।

शुद्ध भावमय मधुरिम व्यञ्जन लाइये ।
फिर अन्तर्मुहूर्त में केवल पाइये ॥
मलमूत्रादिक तन-मल भी जब क्षेपते ।
भूमि शोधकर सूक्ष्म जन्तु को देखते ॥
तीर्थंकर के ऋषियों की पूजन करूँ ।
जिनमुनि बनकर सर्व कर्मबंधन हरूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितसर्वऋषिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा ।

शुद्ध भावमय ज्ञान दीप मंगलमयी ।
धर्म अहिंसा पालें नित हिंसाजयी ॥
मनोगुप्ति के पावन वाद्य बजावते ।
अंतरंग में धर्मप्रकाश सजावते ॥
तीर्थंकर के ऋषियों की पूजन करूँ ।
जिनमुनि बनकर सकल कर्मबंधन हरूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितसर्वऋषिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा ।

शुद्ध भावमय ध्यान अग्नि प्रजलावते ।
परभावों का ईंधन सदा जलावते ॥
वचनयोग तज निज को निज में ध्यावते ।
वचनगुप्ति का भी विकल्प जो त्यागते ॥

तीर्थंकर के ऋषियों की पूजन करूँ।
जिनमुनि बनकर सकल कर्मबंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितसर्वऋषिभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

चेतन-तरु के शुद्धभाव फल लाइये।
महामोक्ष फल पाने शिवपुर जाइये॥
देहाश्रित परिणति निरोध निश्चल सदा।
अन्तर में उपयोग समाया सर्वदा॥
तीर्थंकर के ऋषियों की पूजन करूँ।
जिनमुनि बनकर सकल कर्मबंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितसर्वऋषिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भावमय निर्मल अर्घ्य बनाऊँगा।
गुण अनन्तमय निज अनर्घ्य पद पाऊँगा॥
मनवचकाया योग आस्रव त्यागते।
संवर से शिवपुरपथ में पग धारते॥
तीर्थंकर के ऋषियों की पूजन करूँ।
जिनमुनि बनकर सकल कर्मबंधन हरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितसर्वऋषिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

चौंसठ ऋद्धिधारी ऋषियों को अर्घ्य

वीरछन्द

विविध ऋद्धि के धारी ऋषियों को मैं सादर करूँ प्रणाम।
चौसठ ऋद्धि स्वरूप जानकर मैं भी पाऊँ निज ध्रुवधाम॥
श्रेष्ठ ऋद्धियां चौंसठ प्रगटाते हैं शुद्धभावधारी।
नहीं ऋद्धियों की वांछा है स्वयं प्रगट होती सारी॥

ऋद्धि विक्रिया चारण तप बल औषधि रस अक्षीण सुऋद्धि।
इनके चौसठ भेद जानकर पाऊँ केवलज्ञान समृद्धि॥
चौबीसों तीर्थंकर प्रभु के समवशरण में हैं विख्यात।
एक लाख पच्चीस सहस्र और आठ सौ हैं प्रख्यात॥
अपने अपने निज स्वकाल में सिद्ध स्वपद पाते अमलान।
सर्व ज्ञेय-ज्ञायक होकर भी करते निजानंद रसपान॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणविराजितचौंसठऋद्धिधारिऋषिश्वरेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

विक्रियाधारी ऋषियों को अर्घ्य

रोला

श्री विक्रियाधारी मुनि सब सादर वन्दूँ।
ग्यारह भेदों के अधिपति ऋषि नित अभिनन्दूँ॥
अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा ऋद्धि सहित हैं।
अरु ईशत्व वशित्व कामरूपित्व विहित हैं॥
अप्रतिघात प्राप्ति प्राकाम्य ऋद्धि अनुपम हैं।
अन्तर्ध्यान ऋद्धि अधिपति निज में सक्षम हैं॥
महा विनय से ऋद्धि विक्रियापति अभिनन्दूँ।
दोय लाख पच्चीस सहस्र नौ सौ ऋषि वन्दूँ॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितविक्रियाऋद्धिधारीऋषीश्वरेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

शिक्षक ऋषियों को अर्घ्य

सरसी

समवशरण में भव्य जनों को जो शिक्षा देते।
वे ही शिक्षक कहलाते जो ज्ञान दान देते॥
ग्यारह अंग पूर्व चौदह का अंतरंग में ज्ञान।
तीर्थंकर प्रभु के चरणों में करते निज कल्याण॥

एक मात्र है इनको निज चैतन्य प्राण का ध्यान।
आत्मध्यान बल से शोभित हैं ये भावी भगवान॥

ताटंक

चौबीसों जिन बीस लाख अरु पाँच सहस्र पचपन शिक्षक।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध स्वपद पाऊँ मैं बनूँ नाथ शिक्षक॥
भेदज्ञान की शिक्षा लेकर निज आतम कल्याण करूँ।
रत्नत्रय की दीक्षा लेकर परम शुद्ध निर्वाण वरूँ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितशिक्षकऋषीश्वरेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अवधिज्ञानी ऋषियों को अर्घ्य

वीरछन्द

भूत भविष्यत वर्तमान का अवधिपूर्वक जो है ज्ञान।
उसके धारी महामुनीश्वर द्वादश सभा मध्य छविमान॥
देशावधि, सर्वावधि, परमावधि ज्ञानी ऋषिराज प्रधान।
जान रहे रूपी पदार्थ पर, नहीं अरूपी का है ज्ञान॥
चौबीसों जिन समवशरण में अवधिज्ञान धारी ऋषिराज।
एक लाख अरु सत्ताइस सहस्र छह सौ हैं श्री मुनिराज॥४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणविराजितसर्वअवधिज्ञानिऋषीश्वरेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

मनः पर्ययज्ञानधारी ऋषियों को अर्घ्य

रोला

ज्ञान मनःपर्ययधारी ऋषियों को वन्दन।
ऋजुमति और विपुलमति दोनों का अभिनन्दन॥
परजीवों के मनगत रूपी भाव जानते।
मति श्रुत अवधि जिन्हें है, वे यह ज्ञान धारते॥
पूर्ण देश संयमी विपुलमति के अधिपति हैं।
निश्चित इस भव में होते वे केवलपति हैं॥

चौबीसों तीर्थंकर प्रभु के समवशरण में।
है निवास फिर भी रहते निज आत्म शरण में॥

ताटंक

एक लाख चौवन सहस्र अरु नौ सौ पाँच ऋद्धिधारी।
चौबीसों तीर्थंकर के हैं ऋषि मनःपर्यज्ञान धारी॥
"सव्वे शुद्धा शुद्धणया" प्रभु यही भाव उर में भाऊँ।
मुक्ति भवन सोपान चढूँ मैं अविनाशी शिवपुर पाऊँ॥
मैं चैतन्य महान स्वयं हूँ पूर्णज्ञान का अधिकारी।
निजस्वभाव हृदयंगत हो तो पाऊँ शिवसुख अविकारी॥५॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणविराजितमनःपर्ययज्ञानीधारिऋषिश्वरेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

वादीऋषियों को अर्घ्य

वीरछन्द

चौबीसों तीर्थंकर प्रभु के समवशरण में रहे विराज।
सबके चरणों में वन्दन करता हूँ सविनय हे ऋषिराज॥
वाद-विवाद किया करते हैं कर एकान्तवाद को ध्वस्त।
अनेकान्त का ध्वज लहराते वाद-विवाद जयी अभ्यस्त॥
चौबीसों तीर्थंकर जिन प्रभु समवशरण की जय जय जय।
एक लाख सोलह सहस्र त्रय शतक सर्ववादी मुनि जय॥८॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसर्ववादिऋषीश्वरेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीर्थंकर सहमुक्त मुनियों को अर्घ्य

सोरठा

तीर्थंकर के संग जो मुनिवर शिवपुर गये।
मुनि तेंतीस सहस्र सात शतक अठ्ठानवे॥
शुद्ध भाव संयुक्त पाते हैं निर्वाण पद।
पूजूँ भक्ति प्रमाण विनय सहित वन्दन करूँ॥

चौपाई

तीर्थंकर सहमुक्त मुनीश्वर, तीर्थंकर संग होते ईश्वर।
इन सबकी मैं महिमा जानूँ , निज स्वभाव सम्यक् पहचानूँ ॥
मैं त्रिकाल चैतन्य ईश्वर, बना बनाया हूँ परमेश्वर।
चेतन लक्षण रूप महेश्वर, परिणति में प्रभु जागे यह स्वर ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसहमुक्तमुनीश्वरेभ्यो महाऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

मुक्तिप्राप्त ऋषियों को अर्घ्य

चान्द्रायण

तीर्थंकर के ऋषियों को वन्दन करूँ।
मुक्ति प्राप्त मुनियों का अभिनन्दन करूँ ॥
जितने मुनिवर मुक्त हुए उनको नमन।
विनय भाव से सबको मैं करता नमन ॥
तीर्थंकर का शासन काल महान है।
जो पुरुषार्थ करे पाता निर्वाण है ॥

ताटंक

चौबीसों तीर्थंकर प्रभु के मुक्ति प्राप्त मुनि की संख्या।
लाख अठारह नब्बे सहस्र चार सौ है पूरी संख्या ॥
भाव सहित वन्दन करता हूँ सबको विनय भाव से युक्त।
तुम समान मैं भी बन स्वामी होऊँ भव समुद्र से मुक्त ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितमुक्तिप्राप्तऋषिराजेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अनुत्तर प्राप्त मुनिराजों को अर्घ्य

वीरछन्द

तीर्थंकर प्रभु के कुछ वादी शिक्षक आदि क सुऋषि महान्।
गये अनुत्तर विजय तथा विजयन्त जयन्त विमान प्रधान ॥

अपराजित सर्वार्थसिद्धि पांचों ही नाम अनुत्तर जान।
भाव प्रशस्त अल्प होते ही पा ना सके निजपद निर्वाण॥
आगे चलकर मुक्ति प्राप्त करते सब मुनिवर निश्चित जान।
"वत्थु सहावो धम्मो" का ही एक मात्र होता विज्ञान॥
तीर्थंकर प्रभु चौबीसों के मुनिवर गये अनुत्तरयान।
दोय लाख सतहत्तर आठ शतक इन सबकी संख्या जान॥
इक भव या दो भव अवतारी होते मुनिवर परम प्रसिद्ध।
आत्म शक्ति परिपूर्ण प्राप्त कर हो जाते हैं शाश्वत सिद्ध॥

दोहा

इन सबकी पूजा करूँ विनय भाव संयुक्त।
आप कृपा से एक दिन मैं हो जाऊँ मुक्त॥ ९॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितअनुत्तरप्राप्तमुनिराजेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

कल्पादि प्राप्त मुनिराजों को अर्घ्य

दोहा

तीर्थंकर जिन देव के पूजूँ वे मुनिराज।
गये उर्ध्व ग्रीवक तथा कल्पों में ऋषिराज॥
अल्पराग का फल मिला मुक्ति हो गई दूर।
आगे पायेंगे सभी मुक्ति सौख्य भरपूर॥
जिन आगम से जानिये इनकी संख्या आप।
"अहमिक्को खलु शुद्धो" जपकर हरिये भव संताप॥

ताटंक

ग्रीवक स्वर्ग अनुत्तर में जो ऋषिवर गये उन्हें वन्दन।
वीतरागता के सागर को भूल राग का भाया कण॥
अगर राग सर्वथा नष्ट करते तो जाते सिद्धपुरी।
स्वयं भूल से गुणस्थान गिर पायी इनने स्वर्गपुरी॥

इनकी संख्या एक लाख अरु पाँच सहस्र वसुशतक प्रसिद्ध।
कल्पादिक तज फिर नर भव पा मुनिबन होंगे निश्चित सिद्ध॥
मैं निज ध्रौव्य धुरी ना छोड़ूँ ये ही दो आशीष जिनेश।
पूजूँ भूत विद्य भावी सिद्धों को भाव सहित परमेश॥ १०॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितकल्पादिप्राप्तमुनिराजेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

केवली भगवान को अर्घ्य

वीरछन्द

चौबीसों तीर्थंकर प्रभु के सर्व केवली करूँ प्रणाम।
चार घातिया कर्मनाश कर पाया स्वामी निज ध्रुवधाम॥
परम अनंतचतुष्टय पाया अन्यों का करते कल्याण।
सप्तम भूमि महोदय मण्डप समवशरण राजित भगवान॥
एक लाख पच्चासी सहस्र आठसौ केवलिजिन वन्दूँ।
शुद्ध स्वानुभव रस धारा से, निज परिणति को अभिनन्दूँ॥ ११॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितसर्वकेवलिभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाअर्घ्य

सोरठा

सर्व ऋषीश्वर नाथ भाव सहित वन्दन करूँ।
समवशरण जिनराज महिमामय है विश्व में॥
उपादान अनुसार मोक्ष स्वर्ग आदिक मिले।
जिनशासन उत्कृष्ट भव-भव में चाहूँ प्रभो॥

वीरछन्द

शुद्धातम साधक को चौंसठ ऋद्धि तपस्या बल अनुसार।
हो जाती हैं प्रगट स्वयं ही फिर भी मुनि रहते अविकार॥
केवलज्ञान ऋद्धि होती है केवल केवलज्ञानी को।
शेष ऋद्धियाँ हो जाती हैं तपो शक्ति से ध्यानी को॥

ऋषियों को वन्दन करता हूँ धारूँ परम दिगम्बर वेश।
बाह्यांतर निर्ग्रन्थ बनूँ मैं अन्तरंग में राग न द्वेष॥

दोहा

चौबीसों तीर्थेश के सर्व पूर्वधर जान।
आत्म शक्ति से प्राप्त हो मुझको सम्यग्ज्ञान॥

वीरछन्द

चौबीसों जिन समवशरण में सर्व पूर्वधारी ऋषिराज।
हैं छत्तिस सहस्र नौ सौ चालीस ज्ञानधारी मुनिराज॥
आत्मोत्पन्न सौख्य पाने की अभिलाषा जागी है आज।
निज पर भेदज्ञान महिमा से सिन्चित कर दो हे यतिराज॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजिततीर्थंकरस्य सर्वऋषिवरेभ्यो महार्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

दोहा

तीर्थंकर परिवार के सर्व ऋषीश्वर नाथ।
आत्म ऋद्धि से हो गये प्रभु सिद्धों के साथ॥
पुण्योदय से प्राप्त सब ऋद्धि व्यर्थ है जान।
निज स्वरूप में लीनता चारित ऋद्धि महान॥

वीरछन्द

निज स्वरूप में चरण रमण ही है सम्यक्-चारित्र सुधर्म।
निज स्वरूप में हो प्रवृत्ति तो वस्तु-स्वभाव धर्म है मर्म॥
सर्व यथावस्थित निजात्म गुण सकल विषमता रहित प्रधान।
मोह क्षोभ के अभाव पूर्वक निर्विकार परिणाम महान॥
शुद्ध आत्म में अपनापन ही है सम्यक्त्व श्रेष्ठ बलवान।
इससे जो विपरीत भाव है वही मोह मिथ्यात्व निदान॥

निर्विकार निश्चल परिणति के जो विरुद्ध है वह दुखखान।
यही क्षोभ है मोह संग जो द्वादश में होता अवसान॥

है सम्यक्-चारित्र आत्मा ही अनन्त गुण से परिपूर्ण।
है प्रकाश चैतन्य पुंज का परम तेजमय सुख आपूर्ण॥

ज्ञान-ज्ञेय सर्वथा भिन्न है इनमें कुछ सम्बन्ध नहीं।
ज्ञायक तो केवल ज्ञायक है जिसमें मुक्ति-बन्ध नहीं॥

परिणति साम्यभावमय हो तो होता है सम्यक्-चारित्र।
रत्नत्रय ध्वज अंतरंग में लहराता है परम पवित्र॥

ध्रौव्य त्रिकाली निज आतम का लक्ष्य जगत में श्रेष्ठ महान।
निज ध्रुव की सम्यक् धुन हो तो निश्चित मिलता है निर्वाण॥

मुक्ति पंथ में तो ज्ञानी का इतना ही निर्णय पर्याप्त।
इस निर्णय के द्वारा एक दिवस शिव सुख होता है प्राप्त॥

'चारित्तं खलु धम्मो' का तात्पर्य ज्ञान हो निज में लीन।
निज स्वभाव के अवलम्बन से मोह-क्षोभ हों पूर्ण विलीन॥

ध्रुवस्वभाव ही परम ऋद्धि है गुण अनन्त निधियों से व्याप्त।
दर्शन-ज्ञान-चरित्र ऋद्धियों से बन जाता चेतन आप्त॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणस्थितसर्वऋषीवरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

चान्द्रायण

तीर्थंकर के सर्व ऋषीश्वर पूँज लूँ।
शाश्वत आत्म चन्द्र की उज्ज्वल दूज लूँ॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिन पूजन कर जिनसम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

* * *

21

तीर्थंकर महिमा पूजन

वीरछन्द

महिमा अपरम्पार आपकी कहने में नहिं कोई समर्थ।
गणधर मुनि इन्द्रादिक सुर भी वर्णन करने में असमर्थ॥
भूतल-वन तरु काष्ठ मंगा लेखनी बनाऊँ अनगिनती।
सप्तसमुद्र नीर की स्याही बना लिखूँ प्रभु की विनती॥
तीन लोक की सकल भूमि के पृष्ठ बनाऊँ विविध प्रकार।
फिर भी तीर्थंकर महिमा का कथन न हो सकता साकार॥
अतः भावमय मेरा वन्दन ही स्वीकार करो स्वामी।
यही विनय है तुवपद भव-भव वन्दूँ हे अन्तर्यामी॥

रोला

तीर्थंकर की अद्भुत महिमा उर में लाऊँ।
पूजन करूँ भाव से प्रभु की गरिमा गाऊँ॥
पुण्योदय हो तो भी करूँ आत्मचिन्तन मैं।
इसप्रकार काटूँ अपने सारे बन्धन मैं॥
ज्ञानावरणादिक वसु कर्म विनाश करूँ मैं।
शाश्वत सिद्ध स्वपद अविलम्ब प्रकाश करूँ मैं॥
विनयभाव से करूँ आपकी हे प्रभु पूजन।
पञ्चेन्द्रिय के विषय भोग में रमे न यह मन॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तमहिमायुक्तत्रिकालवर्त्तिसर्वतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री अनन्तमहिमायुक्तत्रिकालवर्त्तिसर्वतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री अनन्तमहिमायुक्तत्रिकालवर्त्तिसर्वतीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

वीरछन्द

शुद्ध भावना युत मुनि बनकर तुमने ध्याया ज्ञान स्वभाव।
आत्म भावना बिना जीव को प्राप्त न होता शुद्ध स्वभाव॥
मोक्षसाधना करना है तो शुद्ध भाव जल अर्पण कर।
तीर्थंकर महिमा उर में धर भाव अशुद्ध निवारण कर॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तमहिमायुक्तत्रिकालवर्त्तिसर्वतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु--विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भावरहित चन्दन है तो दुर्गन्ध न मन की जायेगी।
शुद्ध भाव के बिना जीव की दशा सुधर ना पायेगी॥
आत्म भावना बिना चतुर्गति में होता है आवाजाव।
तीर्थंकर महिमा उर में धर आश्रय मैं लूँ आत्म स्वभाव॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तमहिमायुक्तत्रिकालवर्त्तिसर्वतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोक्षप्राप्ति के लिये धर्म रत्नत्रय है सदैव अनिवार्य।
इसके बिन अक्षय पद दुर्लभ अतः यही है उत्तम कार्य॥
रत्नत्रय से भ्रष्ट न होऊँ भ्रष्ट हुये तो दुःख भरपूर।
तीर्थंकर महिमा उर में धर महामोहमद कर दूँ चूर॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तमहिमायुक्तत्रिकालवर्त्तिसर्वतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भाव बिन चारों गतियों का दुःख ही सदैव मिलता।
भाव पुष्प होता है तो फिर उर में मुक्ति कमल खिलता॥
परम समाधिमरण पाना ही एक मात्र है श्रेष्ठ सुकार्य।
तीर्थंकर महिमा उर में धर तज दूँ रागमयी दुष्कार्य॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तमहिमायुक्तत्रिकालवर्त्तिसर्वतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव विशुद्ध आत्मज्ञानी मुनि पा लेते हैं केवलज्ञान।
भावलिंग अन्तर्विकासिनी शुद्ध भावना का सुस्थान॥
आत्मभाव चरु पाने पर ही भावलिंग होता है प्राप्त।
तीर्थंकर महिमा धारण कर परम शांति होगी उर व्याप्त॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तमहिमायुक्तत्रिकालवर्त्तिसर्वतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भेद-ज्ञान का दीप जले तो महा-मोहतम होता नाश।
चेतन की अन्तर्निधियों पर पड़ता निर्मल पूर्ण प्रकाश॥
जब तक भाव श्रमण न बनूँगा तब तक व्यर्थ सकल श्रुतज्ञान।
तीर्थंकर महिमा उर में धर पा लूँ विमल भाव श्रुतज्ञान॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तमहिमायुक्तत्रिकालवर्त्तिसर्वतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धभावमय ध्यान अनल में कर्ममलों का करूँ अभाव।
निज चैतन्य गन्ध में तन्मय होकर पाऊँ शुद्ध स्वभाव॥
रत्नत्रय से तीर्थंकर हो, अतः श्रेष्ठ रत्नत्रय तीर्थ।
तीर्थंकर महिमा उर में धर शुद्ध आत्मा उत्तम तीर्थ॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तमहिमायुक्तत्रिकालवर्त्तिसर्वतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

महामोक्षफल शुद्धभाव है अतः यही है सर्वोत्तम।
शुद्धभाव बिन जितना भी पुरुषार्थ व्यर्थ है भव-विभ्रम॥
पूर्ण ज्ञान साम्राज्य प्राप्ति हित शुद्धभाव ही श्रेष्ठ उपाय।
तीर्थंकर महिमा उर में धर शुद्ध भाव ही शिवसुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तमहिमायुक्तत्रिकालवर्त्तिसर्वतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज परिणति के अर्घ्य बना निज को अर्पित करते जिनराज।
रत्नत्रय तरणी पर चढ़कर पा लेते हैं सिद्ध समाज॥
शुद्धभाव से पद अनर्घ्य मिल जाता है इस प्राणी को।
तीर्थंकर महिमा उर में धर नमन करूँ जिनवाणी को॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तमहिमायुक्तत्रिकालवर्तिसर्वतीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

महिमा सम्बन्धी अर्घ्य

वीरछन्द

तीर्थंकर के समवशरण की, शोभा तीन लोक विख्यात।
तीर्थंकर के दर्शन भर से, मिलता है सम्यक्त्व प्रभात॥
प्रभो अनंत चतुष्टयमंडित, चौंतीसौं अतिशय सम्पन्न।
अष्ट प्रातिहार्यों से भूषित, जिनवर के गुण कहे अनन्त॥
जब विहार होता दो सौ पच्चीस कमल रचना होती।
स्वर्ण कमल पन्द्रह-पन्द्रह की पंक्ति पादतल में होती॥
हैं छत्तीस सहस्र नौ सौ, चालीस पूर्वधारी ऋषिराज।
मैं भी निज ज्ञायक स्वभाव की, महिमा पाऊँ हे जिनराज॥
एक-एक तीर्थंकर के हैं द्वारपाल यक्ष चौबीस।
प्रति तीर्थंकर द्वारपाल भी, रहे यक्षिणी बीसों बीस॥

ताटंक

जिन तीर्थंकर समवशरण में, तत्त्वज्ञान महिमा पायें।
पंचम गुणस्थानवर्ती, होती हैं सभी आर्यिकाएँ॥
सर्व आर्यिकाओं की संख्या, पद उपचार महाव्रत जान।
पैंतालीस लाख, अरु चारसहस्र, छः शतक पचास महान॥

ये स्त्रीपर्याय छेदकर अन्य भवों में होती मुक्त।
मुनिपद की है नहीं योग्यता, मात्र देश संयम से युक्त॥

तीर्थंकर जिनसमवशरण में, श्रावक तथा श्राविकाएँ।
इनकी संख्या तथा मुख्य श्रोता के नाम जान जाएँ॥

लाख छियानवे सर्व श्राविका, सब मिल जिन उपदेशाधीन।
अड़तालीस लाख श्रावक सब, जिनध्वनि सुनने में तल्लीन॥

बारह में से चार चक्रवर्ती का ही ज्यादा सौभाग्य।
बने मुख्य श्रोता तीर्थंकर, प्रभु के कैसा पाया भाग्य॥

साक्षात् दिव्यध्वनि जिनने सुनी वही है बड़भागी।
आत्मतत्त्व का निर्णय करते, तत्त्वरसिक जिन-अनुरागी॥

करते सब कल्याण स्वयं का, अपने उपादान अनुसार।
मात्र तीर्थंकर निमित्त, कहलाते हैं कारण उपचार॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानलौकिक-अलौकिकमहिमाविभूषित तीर्थंकर--जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्यपुरुष सम्बन्धी अर्घ्य

ताटंक

तीर्थंकर महिमा के गायक, हुए प्रधान प्रसिद्ध पुरुष।
कल्पकाल चौथे आरे में, हुए महान सुपुण्य पुरुष॥

वज्रवृषभ नाराच संहनन. धारी होते हैं अवितर्क।
परिणामों की गति विचित्र है, पाते मोक्ष स्वर्ग या नर्क॥

तीर्थंकर के समक्ष होते, या आगे पीछे होते।
किन्तु सभी ही आगे पीछे, मुक्तिवधू के वर होते॥

इन सब की संख्या का वर्णन, सुन लो जिन आगम अनुसार।
निज परिणामों की सम्हाल कर, हो जाओ भवसागर पार॥

पुण्य पुरुष एक सौ उनहत्तर, होते श्रेष्ठ प्रसिद्ध महान।
चौदह कुलकर, अरु तीर्थंकर चौबिस पिता परम विद्वान॥

जिनमाता चौबीस तथा हैं, कामदेव चौबीस प्रधान।
ग्यारह रुद्र तथा नव नारद, पुरुष शलाका त्रेसठ जान॥

तीर्थंकर चौबीस, चक्रवर्ती द्वादश, नव नारायण।
नव बलभद्र, शलाका त्रेसठ, में हैं नव प्रतिनारायण॥

तीर्थंकर चौबीस पिता चौबीस तथा माता चौबीस।
ये सब पुण्य पुरुष होते हैं आगे पीछे त्रिभुवन ईश॥

बाहुबली अरु अमिततेज श्रीधर दशभद्र प्रसेनजित जान।
चन्द्रवर्ण अग्निमुक्त सनत वत्सराज कनकप्रभ मेघ प्रधान॥

शान्ति कुन्थु अर विजय श्रीचन्द्र नल हनुमान सुबलि नामी।
वासुदेव प्रद्युम्न नाग श्रीपाल तथा जम्बूस्वामी॥

ये चौबीसों कामदेव हैं, भरतक्षेत्र में अति प्रख्यात।
स्वर्गमोक्ष में जाते हैं ये जिन दीक्षा लेकर विख्यात॥

चक्रवर्ती पद में रहते यदि देह तजें तो जाते नर्क।
जिन दीक्षा ले तप करते जो वो शिव सुख पाते या स्वर्ग॥

विजय अचल धर्म सुप्रभ हैं तथा सुदर्शन नन्दी महान।
नन्दीमित्र अरु राम तथा बलराम सु नव बलभद्र महान॥

दो ने पाया स्वर्ग सात ने पाया सिद्ध स्वपद निर्वाण।
नारायण के बड़े भ्रात ये होते हैं उदार बलवान॥

त्रिपृष्ठ द्विपृष्ठ स्वयंभू पुरुषोत्तम व सुदर्शन नृप पुण्डरीक।
दत्त तथा लक्ष्मण व कृष्ण ये नव नारायण अतिनिर्भीक॥

अश्वग्रीव तारक भेरक मधुकैटव अरु निशुम्भबलिजान।
प्रहरण रावण जरासिन्ध ये नव प्रतिनारायण बलवान॥

ग्यारह रुद्र तथा नव नारद नारायण प्रतिनारायण।
सभी अधो पृथ्वी पाते हैं फिर जाते हैं मुक्तिसदन॥
शेष पुरुष अपने परिणामों के अनुसार सुगति पाते।
स्वर्ग मोक्ष तद्भव या आगे पीछे सभी मोक्ष जाते॥
महिमा मण्डित जिनतीर्थंकर की करते सब जय-जयकार।
इनके पद चिन्हों पर चल भवि पाते शाश्वत सुख अपार॥ २॥

ॐ ह्रीं नवषष्टि- अधिकैकशतपुण्यपुरुषविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं नि. स्वाहा।

महार्घ्य

वीरछन्द

गुण अनन्तमय निज-निधान ही श्रीजिन का परमार्थ स्वरूप।
निज महिमा लखकर पाया है प्रभु ने निज परमात्म स्वरूप॥
जिन की महिमा लखकर प्राणी महिमा मंडित होते हैं।
भेदज्ञान की ज्योति जलाकर ज्ञानी पंडित होते हैं॥
श्री जिनवर के ही प्रताप से समवशरण यह सर्जित है।
जब जिनवर का हो विहार तब होता यही विसर्जित है॥
तीर्थंकर महिमा को लखकर मैं भी करूँ घातिया चूर्ण।
शुद्ध स्वभाव शक्ति के द्वारा आत्म शुद्धि पाऊँ आपूर्ण॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानलौकिक-अलौकिकमहिमाविभूषित तीर्थंकर-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

राग-द्वेष को नाशकर आप हुए सर्वज्ञ।
निश्चय से तो आप हो हे स्वामी आत्मज्ञ॥
तीर्थंकर महिमा प्रभो जानी मैंने आज।
कल्पद्रुम पूजन करूँ पाऊँ निजपद राज॥

दिग्पाल

कैवल्यज्ञान अमृत रस आपने पिया है।
त्रेसठ प्रकृतियाँ क्षय कर सर्वज्ञ सुख लिया है॥

हो परम ध्यान अच्युत नित्योपयोग हुलसित।
जितने विभाव आये वे सभी हुए झुलसित॥

प्रभु चमत्कारमय तुम हो संचयी सुखों के।
सम्बद्ध गुण प्रदेशों में घर नहीं दुःखों के॥

निरात्मता नहीं है स्वरूप सहजता है।
अस्तित्व शक्तिपति हो निर्मल विशुद्धता है॥

अविभाग प्रतिच्छेदों में ज्ञानरस भरा है।
स्वकीय आत्मा में निर्वाण रस खरा है॥

रागादि दोष विरहित हो शान्त सौख्य सागर।
नित्योद्योत शाश्वत हो सर्वदा उजागर॥

दैदीप्यमान चैतन्य द्रव्य है तुम्हारा।
उपयोग शुद्ध निर्मल हे नाथ है तुम्हारा॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानलौकिक-अलौकिकमहिमाविभूषित तीर्थंकर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

तीर्थंकर महिमा मैं भी गाऊँ प्रभो।
षोडशकारण शुद्ध भावना हो विभो॥
कल्पद्रुम सम समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ विभो॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

* * *

22

तीर्थ प्रवर्तन काल पूजन

स्थापना

सोरठा

तीर्थ प्रवर्तन काल, चौबीसों तीर्थेश के।
इक दूजे का जान, अन्तराल जय ध्वनि करूँ॥
मुनिवर महा महान, इसी काल में बहु हुए।
पाया केवलज्ञान, वीतराग व्रत धारकर॥
वही हुए अहमिन्द्र, अल्प राग जिनका रहा।
हुए इन्द्र प्रतीन्द, अथवा स्वर्गादिक गये॥
वन्दूँ बारम्बार, तीर्थंकर जिनदेव को।
हो जाऊँ भव-पार, एक बार सम्यक्त्व ले॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकराणां तीर्थप्रवर्तनकालसमये केवलि आदि साधु समूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकराणां तीर्थप्रवर्तनकालसमये केवलि आदि साधु समूह ! अत्र तिष्ठ: तिष्ठ: ठ: ठ: (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकररणां तीर्थप्रवर्तनकालसमये केवलि आदि साधु समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

चौपई आंचली बद्ध

पूजूँ तीर्थ प्रवर्तन काल, चौबीसों जिनराज विशाल।
परमप्रभु हो जय तीर्थेश महा विभु हो॥
शुद्ध ज्ञान जल से भगवान, होता है सबका कल्याण।
परमप्रभु हो जय तीर्थेश महा प्रभु हो॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकराणां तीर्थप्रवर्तनकालवर्तिसर्वकेवलि जिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तप कर बहुमुनि मुक्त हुए, मुक्ति रमा से युक्त हुए। परम. ॥
शुद्ध ज्ञान चन्दन सुख रूप, देता है आनन्द अनूप ॥ परम. ॥
ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकराणां तीर्थप्रवर्तनकालवर्त्तिसर्वकेवलि जिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अल्पराग से हो अहमिन्द्र, स्वर्गादिक मैं इन्द्र प्रतीन्द्र। परम. ॥
अक्षत ज्ञान भाव सुख रूप, अमल अनादि अनन्त अनूप ॥ परम. ॥
ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थकराणां तीर्थप्रवर्तनकालवर्तिसर्वकेवलि जिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सब को वन्दन तीनों काल, पूजन करके होऊँ निहाल। परम. ॥
आत्म पुष्प की गन्ध महान, करती काम भाव अवसान ॥ परम. ॥
ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरस्थ तीर्थप्रवर्तनकालवर्तिसर्वकेवलि जिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुभव रस चरु चरण चढ़ाय, पाऊँ परम तृप्ति सुखदाय। परम. ॥
क्षुधा वेदनी पीर विनाश, पाऊँ सिद्धपुरी का वास ॥ परम. ॥
ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकराणां तीर्थप्रवर्तनकालवर्तिसर्वकेवलि जिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वर्तमान अरु भावी सिद्ध, होऊँ आत्म भावना विद्ध। परम. ॥
भव विभ्रम तम करूँ विनाश, पाऊँ निर्मल ज्ञान प्रकाश ॥ परम. ॥
ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकराणां तीर्थप्रवर्तनकालवर्तिसर्वकेवलि जिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रैकालिक ध्रुव लक्ष्य प्रधान, करूँ आत्मा का कल्याण। परम. ॥
धर्म धूप ही महा महान, अष्ट कर्म का हो अवसान ॥ परम. ॥
ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकराणां तीर्थप्रवर्तनकालवर्तिसर्वकेवलि जिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र, रत्नत्रय हो परम पवित्र। परम. ॥
महामोक्ष फल पाऊँ देव, सिद्ध बनूँ मैं भी स्वयमेव ॥ परम. ॥
ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकराणां तीर्थप्रवर्तनकालवर्तिसर्वकेवलि जिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नाथ करूँ पूजन हर्षाय पद, अनर्घ्य प्रगटे शिवदाय। परम.॥
पाऊँ निज शुद्धात्म सुवास, मोक्षपुरी में मिले निवास॥ परम.॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमान चतुर्विंशतितीर्थंकराणां तीर्थप्रवर्तनकालवर्तिसर्वकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली सोरठा

लाख पचास करोड़, सागर अरु पूर्वांग इक।
तीर्थ प्रवर्तन काल ऋषभदेव का जानिये॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेवस्य तीर्थप्रवर्तनकाल पचास लाख करोड़ सागर एवं एक पूर्वांग समये केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कोटि लाख है तीस, सागर अरु पूर्वांग त्रय।
तीर्थ प्रवर्तन काल, अजितनाथ का जानिये॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल तीस लाख करोड़ सागर एवं चार पूर्वांग समये केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

है दस लाख करोड़, सागर अरु पूर्वांग चौ।
तीर्थ प्रवर्तन काल, संभव जिन का वन्दिये॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री सम्भवनाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल दस लाख करोड़ सागर एवं चार पूर्वांग समये केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

है नौ लाख करोड़, सागर अरु पूर्वांग चौ।
तीर्थ प्रवर्तन काल, अभिनन्दन अभिनन्दिए॥ ४॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल नौ करोड़ सागर एवं चार पूर्वांग समये केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नब्बे सहस्त्र करोड़, सागर अरु पूर्वांग चौ।
तीर्थ प्रवर्तन काल, सुमतिनाथ जिन वन्दिए॥ ५॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल नब्बे सहस्त्र करोड़ सागर एवं चार पूर्वांग समये केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नौ सहस्त्र करोड़, सागर और पूर्वांग चौ।
तीर्थ प्रवर्तन काल, पद्मप्रभ जिन वन्दिए॥ ६॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभस्य तीर्थप्रवर्तनकाल नौ सहस्त्र करोड़ सागर एवं चार पूर्वांग समये केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सागर नौ सौ कोटि, पूर्वांग चार प्रमाणिए।
तीर्थ प्रवर्तन काल, श्री सुपार्श्व जिन वन्दिए॥ ७॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथस्य नौ सौ कोटि एवं चार पूर्वांग तीर्थप्रवर्तनकाल समये केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सागर नब्बे कोटि, चौ पूर्वांग प्रमाणिए।
तीर्थ प्रवर्तन काल, चन्द्रप्रभ जिन वन्दिए॥ ८॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभस्य नब्बे कोटि सागर चार पूर्वांग तीर्थप्रवर्तनकाल समये केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सागर कोटि सु नव, चौथाई पल कम करो।
अट्ठाइस पूर्वांग कम, एक लाख पूर्व जोड़िए॥
अनगिनती मुनिराज, तप कर कर्मजयी हुये।
तीर्थ प्रवर्तन काल, पुष्पदन्त जिन वंदिए॥ ९॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतस्य तीर्थप्रवर्तनकाल अट्ठाईस पूर्वांग कम एक लाख पूर्व एवं चौथाई पल्य कम नौ कोटि सागर समये केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सागर एक करोड़ सौ सागर पल्यार्ध कम।
जोड़ पूर्व पच्चीस शीतलनाथ सुवन्दिए॥ १०॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथस्य सौ सागर आधा पल्य कम एक करोड़ सागर पच्चीस पूर्व में छियासठ लाख छब्बीस सहस्र वर्ष कम समयवर्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौवन सागर इकईस, लाख वर्ष कम पौन पल।
तीर्थ प्रवर्तन काल, श्रेयांस जिन वन्दिए॥ ११॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथस्य चौवन सागर इक्कीस लाख वर्ष में पौन पल्य कम समयवर्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीस सागर चौवन लाख, वर्षों में इक पल्य कम.
तीर्थ प्रवर्तन काल, वासुपूज्य जिन वन्दिए॥ १२॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूजस्य तीर्थप्रवृर्तनकाल सागर चौवन लाख वर्षों में एक पल्य कम समयवर्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नवसागर पन्द्रह लाख, वर्षों में कम पौन पल।
तीर्थ प्रवर्तन काल, विमलनाथ जिन वन्दिए॥ १३ ॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथस्य नौ सागर पन्द्रह लाख वर्ष में पौन पल्य कम तीर्थप्रवर्तनकाल समयवर्त्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौ सागर अरु वर्ष, साढ़े सात लाख में।
पौन पल्य कम जान, अनन्तनाथ जिन वन्दिए॥ १४ ॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल चार सागर साढ़े सात लाख वर्षों में पौन पल्य कम समयवर्त्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रय सागर ढाई लाख, वर्षों में इक पल्य कम।
तीर्थ प्रवर्तन काल, धर्मनाथ जिन वन्दिए॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल इक पल्य कम तीन सागर ढाई लाख वर्ष समयवर्त्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आधा पल्य प्रमाण, साढ़े बारह सौ वरष।
तीर्थ प्रवर्तन काल, शान्तिनाथ जिन वन्दिए॥ १६ ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल आधा पल्य एवं साढ़े बारह सौ वर्ष समयवर्त्ति केवली आदि साधुभ्यों अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाव पल्य में कम, वर्ष अरब दस जानिए।
तीर्थ प्रवर्तन काल, कुन्थुनाथ जिन वन्दिए॥ १७ ॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल पाव पल्य में दस अरब साढे सत्ताईस सौ वर्ष कम समयवर्त्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वर्ष अरब दस जान तेंतीस सहस्र नौ शतक कम।
तीर्थ प्रवर्तन काल अरहनाथ जिन वन्दिए॥ १८ ॥

ॐ ह्री श्री अरनाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल तैंतीस सहस्र नौ सौ वर्ष कम दस अरब वष समयवर्त्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वर्ष सु चौवन लाख, सहस्र सैंतालिस चार सौ।
तीर्थ प्रवर्तन काल, मल्लिनाथ जिन वन्दिए॥ १९ ॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल चउवन लाख सैंतालीस सहस्र चार सौ वर्ष समयवर्त्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वर्ष लाख छः और, सहस्र पाँच युत जानिए।
तीर्थ प्रवर्तन काल, मुनिसुव्रत जिन वन्दिए॥ २०॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल छह लाख पांच सहस्र वर्ष समयवर्त्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाँच लाख हैं वर्ष, शतक अठारह जानिये।
तीर्थ प्रवर्तन काल, नमि जिनवर को वंदिए॥ २१ ॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल पांच लाख अठारह सौ वर्ष समयवर्त्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहस चुरासी वर्ष, तीन शतक अस्सी सहित।
तीर्थ प्रवर्तन काल, नेमिनाथ जिन वन्दिए॥ २२ ॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल चौरासी सहस्र तीन सौ अस्सी वर्ष समयवर्त्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दो सौ अठत्तर वर्ष, काल बहुत ही अल्प है ।
तीर्थ प्रवर्तन काल, पार्श्वनाथ प्रभु वन्दिए॥ २३ ॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथस्य तीर्थप्रवर्तनकाल दो सौ अठत्तहर वर्ष समयवर्त्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहस्र वर्ष इक्कीस, ब्यालिस वर्ष भी जोड़िये।
तीर्थ प्रवर्तन काल, महावीर को वंदिए॥
मुनिवर हुए महान पाप-पुण्य सब नाश कर।
धन्य-धन्य तीर्थेश, बार-बार वन्दन करूँ॥ २४ ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरस्य तीर्थप्रवर्तनकाल इक्कीस सहस्र बयालीस वर्ष समयवर्त्ति केवली आदि साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

सोरठा

वस्तु स्वरूप विचार असंख्यात मुनि हो गये।
शुद्ध भाव उर धार भव सागर से तिर गये॥

दोहा

तीर्थ प्रवर्तन काल का ज्ञान हुआ प्रभु आज।
काल लब्धि की प्राप्ति हित पूजूँ श्री जिनराज॥

मरहठा माधवी

चौदह राजु उतंग लोक है एक काल उत्सर्पिणी।
छह कालों से युक्त जानिये काल एक अवसर्पिणी॥
सुखमा-सुखमा कोड़ा-कोड़ी सागर चार प्रमाणिये।
सुखमा काल तीन कोड़ा-कोड़ी सागर का मानिये॥
सुखमा-दुःखमा काल दोय कोड़ा कोड़ी का जानिये।
दुःखमा-सुखमा कोड़ा कोड़ी एक में कुछ कम मानिये॥
दुःख वर्ष इक्कीस सहस्र अरु दुःखमा-दुःखमा भी इतना।
असंख्यात पल्यों का होता सागर एक बड़ा जितना॥
यह व्यवहार-पल्य और उद्धार-पल्य अनुमान से।
अरु है अद्धा-पल्य अनंत वर्षों सम शास्त्रप्रमाण से॥
लाख चौरासी वर्षों का तो पूर्वांग इक जानिये।
लाख चौरासी पूर्वागों का एक पूर्व ही मानिये॥
चौथा काल एक कोड़ा-कोड़ी सागर का जानिये।
असंख्यात अवसर्पिणी गये हुण्डावसर्पिणी मानिये॥
वर्तमान हुण्डावसर्पिणी काल अभी है मानिये।
काल दोष से तीर्थंकर को कन्या होती जानिये॥

चक्रवर्ती का हो जाता है खण्डित मान प्रमाणिये।
आदि अन्य घटनायें होती जिन-आगम से जानिये॥
श्री सर्वज्ञदेव ने जानी घटनायें षट् काल की।
चरणों में है अर्घ्य समर्पित, महिमा शुद्ध त्रिकाल की॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकराणां तीर्थप्रवर्तनकालवर्तिसर्वकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

पूर्ण अर्घ्य अर्पित करूँ तीर्थ प्रवर्तन काल।
जो भी मुनि केवली हुए वन्दन करूँ त्रिकाल॥

वीरछंद

काल दोष से हुण्डावसर्पिणी में होती है विच्छुत्ति।
अन्य कल्प कालों में होती कभी न लेश तीर्थ विच्छुत्ति॥
मोक्षमार्ग बन्द हो जाता भव्यों को होता है खेद।
कुछ तीर्थंकर के कालों में हुआ तीर्थ का भी विच्छेद॥
ऋषभदेव से चन्द्रप्रभ तक नहीं तीर्थ विच्छेद हुआ।
पुष्पदन्त के बाद पल्य का चतुर्थांश विच्छेद हुआ॥
शीतल जिन के बाद पल्य का अर्धभाग विच्छेद हुआ।
श्रेयांस के बाद पल्य का पौन भाग विच्छेद हुआ॥
वासुपुज्य के बाद तीर्थ का एक पल्य विच्छेद हुआ।
विमलनाथ के बाद तीर्थ का पौन पल्य विच्छेद हुआ॥
प्रभु अनन्त के बाद तीर्थ का अर्ध पल्य विच्छेद हुआ।
धर्मनाथ के बाद पल्य का चतुर्थांश विच्छेद हुआ॥

शान्तिनाथ से महावीर तक नहीं तीर्थ विच्छेद हुआ।
इन कालों में भव्यजनों के मन में अल्प न खेद हुआ॥
ऋषभदेव से महावीर तक हुये असंख्यों सिद्ध महान।
आत्मज्ञान की महाशक्ति प्रगटाकर पाया पद निर्वाण॥
नाथ अनन्तवीर्य को वन्दूँ प्रथम मुक्तिगामी भगवान।
अंतिम श्रीधर केवलि वन्दूँ सिद्धपुरी सम्राट महान॥

ॐ ह्रीं श्री वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकराणां तीर्थप्रवर्तनकालवर्ति सर्वकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

तीर्थ प्रवर्तन काल जानकर भाव से।
हे तीर्थेश! जुड़ूँ मैं आत्म स्वभाव से॥
कल्पद्रुम जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

हे प्रभो! चरणों में तेरे आ गये।
भावना अपनी का फल हम पा गये॥ टेक॥

वीतरागी हो तुम्हीं सर्वज्ञ हो।
सप्त तत्त्वों के तुम्हीं मर्मज्ञ हो॥
मुक्ति का मारग तुम्हीं से पा गये॥ १॥

विश्व सारा है झलकता ज्ञान में।
किन्तु प्रभुवर लीन हैं निज ध्यान में॥
ध्यान में निज ज्ञान को हम पा गये॥ २॥

तुमने बताया जगत को सब आत्मा।
द्रव्य-दृष्टि से सदा परमात्मा॥
आज निज परमात्मा पद पा गये॥ ३॥

23

श्री अनुबद्ध केवली पूजन

स्थापना

वीरछन्द

प्रथम जिनेश्वर आदिनाथ से महावीर जिनवर पर्यन्त।
जितने भी अनुबद्ध केवली हुये शाश्वत सिद्ध महन्त॥
मोह क्षीण कर घाति विनाशे दशा हुई अरहन्त प्रसिद्ध।
फिर अघातिया भी विनाशकर श्री केवली होते सिद्ध॥
उन सबकी पूजन की महिमा मैंने जानी आज महान।
मन-वच-तन से पूर्ण समर्पित होकर पूजूँ हे भगवान॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्राः ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्राः ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्राः ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

ताटंक

शुद्ध स्वरूपाचरण नीर की महिमा लख मिथ्यात्व भगा।
निज अनुभव रस शीतल पाकर अन्तर में सम्यक्त्व जगा॥
मैं अनुबद्ध केवली वन्दूँ निज कल्याण हेतु स्वामी।
केवलज्ञान प्राप्त हो ऐसा बल प्रगटे अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वरूपाचरण सुचन्दन भवाताप का नाशक है।
निज अनुभव रस की सुगन्ध ही ध्रुव चैतन्य प्रकाशक है॥

'मैं अनुबद्ध केवली वन्दूँ निज कल्याण हेतु स्वामी।
केवलज्ञान प्राप्त हो ऐसा बल प्रगटे अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वरूपाचरण सुअक्षत निज स्वभाव तरु के हैं फूल।
निज अनुभव तरु की छाया में ही होता शिव सुख अनुकूल॥
मैं अनुबद्ध केवली वन्दूँ निज कल्याण हेतु स्वामी।
केवलज्ञान प्राप्त हो ऐसा बल प्रगटे अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वरूपाचरण कुंज के पुष्प हृदय करते बलवान।
निज अनुभव रस भरे कलश निज अन्तर में आते छविमान॥
मैं अनुबद्ध केवली वन्दूँ निज कल्याण हेतु स्वामी।
केवलज्ञान प्राप्त हो ऐसा बल प्रगटे अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वरूपाचरण सुचरु ही चिर अतृप्ति का नाशक है।
निज अनुभव रस निर्मित चरु ही अक्षय सौख्य प्रकाशक है॥
मैं अनुबद्ध केवली वन्दूँ निज कल्याण हेतु स्वामी।
केवलज्ञान प्राप्त हो ऐसा बल प्रगटे अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वरूपाचरण दीप चैतन्य प्रकाशक मन भावन।
निज अनुभवघृत ही महिमामय अति पवित्र है अति पावन॥
मैं अनुबद्ध केवली वन्दूँ निज कल्याण हेतु स्वामी।
केवलज्ञान प्राप्त हो ऐसा बल प्रगटे अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वरूपाचरण धूप ही कर्मनाश में सक्षम है।
निज अनुभव रहते भीतर तो कहीं नहीं भव विभ्रम है॥
मैं अनुबद्ध केवली वन्दूँ निज कल्याण हेतु स्वामी।
केवलज्ञान प्राप्त हो ऐसा बल प्रगटे अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वरूपाचरण सुफल ही पकने पर शिवफल देता।
चारों गतियों की भव बाधा निमिष मात्र में हर लेता॥
मैं अनुबद्ध केवली वन्दूँ निज कल्याण हेतु स्वामी।
केवलज्ञान प्राप्त हो ऐसा बल प्रगटे अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वरूपाचरण अर्घ्य यह वसु विध संजों संजों लाया।
पद अनर्घ्य ध्रुव पाने का ही अब अपूर्व अवसर पाया॥
सतत निरन्तर चल पिपिलिका सौ योजन तक भी जाती।
मात्र विचारक गरुड़ प्रमादी को न कभी भी गति आती॥
हैं मिथ्यात्व मेघ आच्छादित कलयुग में वर्षा ऋतु सम।
कहीं कहीं उपदेशक मिलते कभी कभी जुगनू के सम॥
मैं अनुबद्ध केवली वन्दूँ निज कल्याण हेतु स्वामी।
केवलज्ञान प्राप्त हो ऐसा बल प्रगटे अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

चान्द्रायण

तीर्थंकर जब पाते हैं निर्वाण पद।
उसी दिवस जो पाते केवलज्ञान पद॥

जब ये जाते मोक्ष दूसरे केवली।
होते कहलाते अनुबद्ध सु केवली॥

ताटंक

ऋषभदेव से शीतल जिन तक प्रति तीर्थंकर के पश्चात।
चौरासी-चौरासी जिन केवलि अनुबद्ध हुए विख्यात॥

हुए बहत्तर प्रभु अनुबद्ध केवली श्री श्रेयांस के बाद।
चवालीस अनुबद्ध केवली वासुपूज्य स्वामी के बाद॥

श्री अनुबद्ध केवली चालीस विमलनाथ के बाद हुये।
श्री अनुबद्ध केवली छत्तीस प्रभु अनन्त के बाद हुए॥

श्री अनुबद्ध केवली बत्तीस धर्मनाथ पश्चात हुए।
अठ्ठाइस अनुबद्ध केवली शान्तिनाथ के बाद हुए॥

श्री अनुबद्ध केवली चौबीस कुन्थुनाथ पश्चात हुए।
श्री बीस अनुबद्ध केवली अरहनाथ पश्चात हुए॥

श्री अनुबद्ध केवली षोडश मल्लिनाथ पश्चात हुए।
फिर द्वादश अनुबद्ध केवली मुनिसुव्रत पश्चात हुए॥

हुए आठ अनुबद्धकेवली श्री नमि जिनवर के पश्चात्।
हुए चार अनुबद्ध केवली नेमिनाथ प्रभु के पश्चात्॥

हुए तीन अनुबद्ध केवली पार्श्वनाथ जिनवर के बाद।
हुए तीन अनुबद्ध केवली महावीर स्वामी के बाद॥

चौबीसों तीर्थंकर जिन जब मोक्ष गये उनके पश्चात्।
क्रम-क्रम से अनुबद्ध केवली हुए खण्ड भारत विख्यात॥

सब मिल एक सहस्र एक सौ ब्यासी हुए केवली नाथ।
महा-अर्घ्य अर्पित करता हूँ छोड़ूँ कभी न तुव पद साथ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

श्री केवली नाथ प्रभु, जो अनुबद्ध महान।
सघन मोह की गाँठ हर, किए घाति अवसान॥

ताटंक

"जिनवरस्य नयचक्र" चलाकर नय विवाद सारे जीते।
फिर निज ध्यान लीन हो स्वामी सकल कर्म रज से रीते॥
ध्रुव स्वभाव सम्राट ज्ञान साम्राज्य आपका परम विशाल।
विद्रोहोन्मुख मोही प्राणी चरणों में आ हुए निहाल॥
दीप्ति अस्खलित सदा आपकी नित्य निरन्जन निश्चल रूप।
चिदानन्द घन चिन्मय चेतन निष्कामी अविकार स्वरूप॥
नयातीत हो नाथ आपने दिया जगत को नय का ज्ञान।
अतः अनेकों भव्य जीव प्रभु-चरणों का करते नित ध्यान॥
जिनवरस्य नयचक्र ज्ञान का सागर है अद्भुत सुविशाल।
परम भाव में अवगाहन कर हो जाते स्वयमेव निहाल॥
नैगम संग्रह नय व्यवहार तथा ऋजुसूत्र शब्द नय जान।
समभिरूढ़ नय एवंभूत यही सातों नय हैं बलवान॥
द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नय निश्चय अरु व्यवहार विशेष।
नय सापेक्ष सभी होते हैं शब्द अर्थ नय ज्ञान विशेष॥
वस्तु अंश को नय ग्रहता है पूर्ण वस्तु को सदा प्रमाण।
विविध नयों से वस्तु तत्त्व को जान करो अपना कल्याण॥
पर में कर्त्ता-कर्म वासना नष्ट करेगा जब नयज्ञान।
भोक्तृत्व का भाव स्वयं ही उड़ जाता जलबिन्दु समान॥

शुद्ध आत्मा नयातीत है सिद्धों के समान गुणवान।
प्रथम दशा में द्रव्यदृष्टि पर्यायदृष्टि करती अवसान॥

सैंतालीस नयों में समझो अनेकान्त का जो वैभव।
नयातीत होकर के चेतन आज स्वपद लो अपुनर्भव॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकराणां अनुबद्धकेवलिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

मैं अनुबद्ध केवली पूजूँ भाव से।
शाश्वत सुख पाऊँ मैं शुद्ध स्वभाव से॥
कल्पद्रुप जिन समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

भजन

तू जाग रे चेतन प्राणी कर आतम की अगवानी।
जो आतम को लखते हैं उनकी है अमर कहानी॥ टेक॥

है ज्ञान मात्र निज ज्ञायक जिसमें हैं ज्ञेय झलकते।
यह झलकन भी ज्ञायक है, इसमें नहिं ज्ञेय महकते॥
मैं दर्शन ज्ञान स्वरूपी मेरी चैतन्य निशानी॥ १॥

अब समकित सावन आया, चिन्मय आनन्द बरसता।
भीगा है कण-कण मेरा, हो गई अखण्ड सरसता॥
समकित की मधु चितवन में झलकी है मुक्ति निशानी॥ २॥

ये शाश्वत भव्य जिनालय, है शान्ति बरसती इनमें।
मानों आया सिद्धालय, मेरी बस्ती हो उसमें॥
मैं हूँ शिवपुर का वासी भव-भव की खतम कहानी॥ ३॥

24

जिनगुण सम्पत्ति पूजन

स्थापना

कुण्डलिया

जिनगुण सम्पति प्राप्तकर होते मुनि जिनराज।
इसीलिये पूजन करूँ पाऊँ निजपद राज॥
पाऊँ निजपद राज प्रभो अब अपने बल से।
आस्रव भावों को नाशूँ संवर निर्मल से॥
शुक्लध्यान पाने छोड़ूँ प्रभु पर की संगति।
आत्मध्यान से पाऊँगा जिनगुण सम्पत्ति॥

ॐ ह्रीं श्री जिनगुणसम्पत्तिसम्पन्नतीर्थंकरजिनेन्द्राः ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री जिनगुणसम्पत्तिसम्पन्नतीर्थंकरजिनेन्द्राः ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (:इतिस्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री जिनगुणसम्पत्तिसम्पन्नतीर्थंकरजिनेन्द्राः ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

गीतिका

आत्मध्यानी के लिये तो चाहिये अब शुक्लध्यान।
गुणस्थानातीत फल युत ध्यान है सबसे महान॥
पक्षातिक्रान्त स्वरूप पाने ज्ञान- जल ही चाहिये।
शीघ्र जिनगुण प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिये॥

ॐ ह्रीं श्री जिनगुणसम्पत्तिसम्पन्नतीर्थंकरजिनेन्द्राय जन्म्-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

नयातीत दशा मिलेगी कर्मरज होगी विचूर्ण।
पूर्ण केवलज्ञान होगा नहीं सुख होगा अपूर्ण॥

शुद्ध चन्दन भवातप हर हमें लाना चाहिये।
शीघ्र जिनगुण प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिये॥

ॐ ह्रीं श्री जिनगुणसम्पत्तिसम्पन्नतीर्थंकरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

उज्वल अखण्डित आत्मसुखकी फसल लहरायी स्वयं।
गुण अनन्त अपूर्व उर में उछलते हैं बिना श्रम॥
यही अक्षय सौख्य का भण्डार हमको चाहिये।
शीघ्र जिनगुण प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिये॥

ॐ ह्रीं श्री जिनगुणसम्पत्तिसम्पन्नतीर्थंकरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

वस्तुतत्त्व स्वरूपदर्शन सहज होता है सदा।
धर्म· वस्तु-स्वभाव ज्ञानी के हृदय में सर्वदा॥
धर्म सुरभित सुमन से श्रृंगार करना चाहिये।
शीघ्र जिनगुण प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिये॥

ॐ ह्रीं श्री जिनगुणसम्पत्तिसम्पन्नतीर्थंकरजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह-विष युत व्यञ्जनों से अप्रभावी हूँ सदा।
क्योंकि मैं चैतन्यमय अमृत स्वरूपी सर्वदा॥
ज्ञानरस नैवेद्य सेवन सदा करना चाहिये।
शीघ्र जिनगुण प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिये॥

ॐ ह्रीं श्री जिनगुणसम्पत्तिसम्पन्नतीर्थंकरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लक्ष्य में हो ध्रुव त्रिकाली तो सहज ही मुक्ति पद।
लक्ष्य यदि इससे परे है तो मिलेगा भव अपद॥
ज्ञान दीपावलि हृदय में अब सजाना चाहिये।
शीघ्र जिनगुण प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिये॥

ॐ ह्रीं श्री जिनगुणसम्पत्तिसम्पन्नतीर्थंकरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्व निर्णय धूप में अब मोह का ईंधन जला।
हित-अहित का हो विवेकी ज्ञान तब होगा भला॥
ध्यान धूप महान पा विश्राम करना चाहिये।
शीघ्र जिनगुण प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिये॥

ॐ ह्रीं श्री जिनगुणसम्पत्तिसम्पन्नतीर्थंकरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

अतीन्द्रिय आनन्द से होता तरंगित अन्तरंग।
आत्म अनुभव सुफल द्वारा छोड़ दूँ संसार रंग॥
आत्मघाती अतिक्रमण से सदा बचना चाहिये।
शीघ्र जिनगुण प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिये॥

ॐ ह्रीं श्री जिनगुणसम्पत्तिसम्पन्नतीर्थंकरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

आत्मख्याति भावना हो तो मिलेगा यथाख्यात।
कषायें सब विलय होंगी मिटेगी यह कर्मरात॥
अर्घ्य वसुविधि की महत्ता जागृत उर लेखकर।
घातिया खुद भाग जायेंगे प्रलय को देखकर॥
राग से अनुबंध तज भवबंध हरना चाहिये।
शीघ्र जिनगुण प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिये॥

ॐ ह्रीं श्री जिनगुणसम्पत्तिसम्पन्नतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अर्घ्यावली

अनन्त चतुष्टय सम्बन्धी अर्घ्य

चामर

अनन्तदर्शन सहित अनन्तज्ञान हैं महान।
अनन्तसुख अनन्तवीर्य आप में विराजमान॥
अनन्तचतुष्टय धनी घाति नाश कर हुये।
ज्ञान कैवल्य का विमल प्रकाश कर हुये॥

और भी अनन्त गुण आप में विराजमान।
तीन काल-लोक में आप ही हुए प्रधान॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितअनन्तचतुष्टयसहित तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्म समय के दश अतिशय सम्बन्धी अर्घ्य

जन्म समय दश अतिशय आपके प्रधान हैं।
स्वेद मल दोष रहित सम चतुः संस्थान हैं॥
वज्र वृषभनाराच संहनन है महान।
रुधिर स्वेत दुग्ध सम कामदेव समप्रधान॥
देह है सुगंधमयी हित-मित-प्रियवचन है।
अतुलबल एक सहस्त्र अष्ट लक्षण है॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितजन्मसमयकृतदशातिशयसहित तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

केवलज्ञान समय के दश अतिशयसम्बन्धी अर्घ्य

अतिशय दश ज्ञान कैवल्य के समय हुए।
चार शतक योजन तक तो सुभिक्ष ही हुए॥
धनुष पाँच सौ प्रमाण उच्च आकाश गमन।
प्राणीवध का अभाव शान्तधरा और गगन॥
कवल-आहार उपसर्ग रहित आप हैं।
चारों दिशि समवशरण में सुदृश्य आप हैं॥
सर्वजगत ईश्वर हैं नेत्र टिमकार हीन।
नखकेश वृद्धि नहीं तन छाया से विहीन॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितकेलवज्ञानसमयकृतदशातिशयसहित तीर्थंकर जिनेन्द्राय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देवकृत चतुर्दश अतिशय सम्बन्धी अर्घ्य

चतुर्दश देवोपम अतिशय महान है।
अर्धमागधी भाषा सर्व अर्थ ज्ञान है॥
सभी जीव कलह द्वेष वैरभाव छोड़ते।
षट्ऋतु के फल फूल वृक्ष स्वयं ओढ़ते॥
धूलकंटक विहीन भूमि आदर्श है।
दर्पण सम पृथ्वी वायुगंध सहित स्पर्श है॥
मेघकुंवर गंधोदक वृष्टि किया करते हैं।
धान्यशाली हरे भरे खेत हृदय हरते हैं॥
आनन्द मग्न जगत के जीव सभी नाचते।
वायुकुमार गंधमयी पवन शुद्ध राजते॥
कूप सरित वापिका निर्मल जल पूर्ण है।
निर्मल आकाश है कृष्णघन चूर्ण है॥
सर्वोपद्रव विहीन शान्त वातावरण।
स्वर्णकमल चरण तल होय जब संचरण॥
धर्मचक्र और अष्टद्रव्य गर्व से चलें।
हम अतिशय चतुर्दश जान पापघन दलें॥४॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितदेवकृतचतुर्दशातिशयसहित तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट प्रातिहार्य सम्बन्धी अर्घ्य

अष्टप्रातिहार्य भी आप जान लीजिये।
पृष्टभाग में अशोकवृक्ष जान लीजिये॥
त्रिभुवन के अधिपति शिर तीनछत्र शोभित हैं।
रत्निम सिंहासन लख सकल जीव मोहित हैं॥

भामण्डल की द्युति में सात भव जान लूँ।
तीन भूत त्रय भविष्य एक विद्यमान लूँ॥
चतुः षष्ठि चमर यक्ष ढोरते हैं निजकर से।
पुष्पों की बरसात होती है अम्बर से॥
साढ़े बारह सुकोटि भांति-भांति देवोपम।
बिना रुके बजती हैं दुन्दुभियाँ द्रुम द्रुम द्रुम॥
सप्त भंग स्याद्वाद अनेकान्त निर्झरणी।
खिरती है चार बार जिनवाणि सुखकरणी॥
यही अष्टप्रातिहार्य पूज रहे तुव प्रताप।
पर ये जड़ पुद्गल हैं आत्माश्रित हुए आप॥५॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितअष्टप्रातिहार्यसहित तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शील गुण सम्बन्धी अर्घ्य

महागुण लाख चौरासी शील के महान।
अष्टादश सहस्र गुण शील के परम प्रधान॥
महाकीर्ति के प्रतीक मानस्तम्भ है महान।
प्रकृति त्रेसठ रहित आप हैं महा महान॥
समवशरण आपका तीनलोक में महान।
जितने मुनिगणधर हैं उन सब में हैं प्रधान॥
और भी विशेषतायें आप में हैं विद्यमान।
परमौदारिक सुतन सर्वोच्च जग प्रधान॥६॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितअष्टादशसहस्रविधशीलसहित तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

जिनगुण सम्पति प्राप्ति हित पाऊँ सम्यग्ज्ञान।
रत्नत्रय की भक्ति से पाऊँ पद निर्वाण॥
दोष अनन्त महान हैं मेरे भीतर नाथ।
अतः न छोड़ूँगा कभी तुव चरणों का साथ॥

विधाता

बंदकर निज झरोखों को ज्ञान-दर्शन न पाऊँगा।
तत्त्व निर्णय के वातायन से दर्शन ज्ञान पाऊँगा॥
पवन पावन चलेगी जब हृदय में हर्ष बहु होगा।
मोह मिथ्यात्व भागेगा उजाला पूर्ण पाऊँगा॥
प्रभा सम्यक्त्व के रवि की खिलेगी सर्व भ्रमतम हर।
क्षीण अविरति स्वतः होगी ज्ञान की भोर पाऊँगा॥
दशा निज आत्म संयम की सुगंधित सहज आयेगी।
प्रमादों के उड़ेंगे कण दशा अप्रमत्त पाऊँगा॥
छठे अरु सातवें में जब मुझे कोई झुलाएगा।
कषायें चार क्षय करके बारहवाँ शीघ्र पाऊँगा॥
प्रभा कैवल्य की अनुपम मुझे मस्तक झुकायेगी।
दशा अरहंत तत्क्षण ही प्रकट मैं देख पाऊँगा॥
पूर्ण सम्पत्ति जिनगुण की मिलेगी निमिष में मुझको।
उसे भी बाँटकर जग को सिद्ध पद शीघ्र पाऊँगा॥
योगबल भी हुआ निर्बल कमर टूटी है अब उसकी।
पूर्ण सिद्धत्व योगातीत पद पल भर में पाऊँगा॥

शिखर त्रैलोक्य झूमेगा दर्श कर आत्म-वैभव का ।
प्राप्त कर आपकी सम्पति, प्रभो ! आनन्द पाऊँगा ॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजितजिनगुणसम्पत्तिसम्पन्न तीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

चान्द्रायण

जिनगुण सम्पति आज हृदय को भा गयी ।
निजानंद की पवन हृदय में छा गई ॥
कल्पद्रुम जिन-समवशरण पाऊँ प्रभो ।
जिन पूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ विभो ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

* * *

दर्शन - स्तुति

निरखत जिनचन्द्र- वदन स्व-पद सुरुचि आई ।
प्रगटी निज आन की पिछान ज्ञान भान की ।
कला उद्योत होत काम-जामनी पलाई ॥ निरखत. ॥
शाश्वत आनन्द स्वाद पायौ विनस्यो विषाद ।
आन में अनिष्ट- इष्ट कल्पना नसाई ॥ निरखत. ॥
साधी निज साध की समाधि मोह- व्याधि की ।
उपाधि को विराधि कै आराधना सुहाई ॥ निरखत. ॥
धन दिन छिन आज सुगुनि चिंते जिनराज अबै ।
सब सुधरो काज 'दौल' अचल रिद्धि पाई ॥ निरखत. ॥

25

जिनेन्द्र पंचकल्याणक पूजन

वीरछन्द

चौबीसों जिन के पाँचों कल्याणक शुभ मंगलदायी।
गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष कल्याणक पूजूँ सुखदायी॥
ऋषभ अजित संभव अभिनंदन सुमति पद्म सुपार्श्व भगवंत।
चंद्र सुविधि शीतल श्रेयांश जिन वासुपूज्य प्रभु विमल अनंत॥
धर्म शांति अरु कुन्थु अरहजिन मल्लि मुनिसुव्रत गुणवंत।
नमि नेमी प्रभु पार्श्व वीर के पञ्चकल्याणक हों जयवन्त॥
प्रभु की पंचकल्याणक पूजन करके निज कल्याण करूँ।
परिणति में आह्वानन स्थापन अरु सन्निधिकरण करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणकविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणकविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणकविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्र !अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

वीरछन्द

शुभ्र नीर की तीन धार दे जन्म जरा मृतु हरण करूँ।
सम्यक् दर्शन की विभूति पा मोक्षमार्ग को ग्रहण करूँ॥
जिन तीर्थंकर के बतलाये रत्नत्रय को वरण करूँ।
गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष पांचों कल्याणक नमन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणकविभूषितजिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

मलयागिरि चन्दन अर्पित कर भव का आतप हरण करूँ।
सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर मैं भी मोक्षमार्ग को ग्रहण करूँ॥
जिन तीर्थंकर के बतलाये रत्नत्रय को वरण करूँ।
गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष पांचों कल्याणक नमन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणकविभूषितजिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत से अक्षय पद पाऊँ भवसागर दुख हरण करूँ।
सम्यक् चारित्र के प्रभाव से मोक्षमार्ग को ग्रहण करूँ॥
जिन तीर्थंकर के बतलाये रत्नत्रय को वरण करूँ।
गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष पांचों कल्याणक नमन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणकविभूषितजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

सुन्दर पुष्प सुगन्धित लाकर काम शत्रु मद हरण करूँ।
सम्यक् तप की महाशक्ति से मोक्षमार्ग को ग्रहण करूँ॥ जिन. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणकविभूषितजिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

शुभ नैवेद्य भेंटकर स्वामी क्षुधा व्याधि को हरण करूँ।
चेतन रस पूरित व्यञ्जन से मोक्षमार्ग को ग्रहण करूँ॥ जिन. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणकविभूषितजिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

तम का नाशक दीप जलाकर मोह तिमिर को हरण करूँ।
निज अंतर आलोकित करके मोक्षमार्ग को ग्रहण करूँ॥ जिन. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणकविभूषितजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

ध्यान अग्नि में धूप डालकर अष्ट कर्म को दहन करूँ।
शुक्ल ध्यान की प्राप्ति हेतु मैं मोक्षमार्ग को ग्रहण करूँ॥ जिन. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणकविभूषितजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं नि. स्वाहा।

शुद्ध भाव फल लेकर स्वामी पाप पुण्य को हरण करूँ।
परम मोक्षपद पाने को मैं मोक्षमार्ग को ग्रहण करूँ॥ जिन. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणकविभूषितजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

वसु विधि अर्घ चढ़ाकर मैं अष्टम वसुधा को वरण करूँ।
निज अनर्घ पद प्राप्ति हेतु मैं मोक्षमार्ग को ग्रहण करूँ॥ जिन. ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणक विभूषितजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तयेअर्घ्यं नि. स्वाहा।

गर्भकल्याणक सम्बन्धी अर्घ्य

दोहा

श्री जिन गर्भ कल्याण की महिमा अपरम्पार।
रत्नों की बौछार हो घर-घर मंगलाचार॥

वीरछन्द

गर्भ पूर्व छह मास जन्म तक नित नूतन मंगल होते।
नव बारह योजन नगरी रच इन्द्र महा हर्षित होते॥
गर्भ दिवस जिनमाता को दिखते हैं सोलह स्वप्न महान।
बैल, सिंह, माला, लक्ष्मी, गज, रवि, शशि, सिंहासन छविमान॥
मीन युगल, दो कलश, सरोवर, सुरविमान, नागेन्द्र विमान।
रत्न राशि, निर्धूम अग्नि, सागर लहराता अतुल महान॥
स्वप्न फलों को सुनकर हर्षित, होता है अनुपम आनन्द।
धन्य गर्भ कल्याण देवियाँ सेवा करती हैं सानन्द॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री गर्भकल्याणकविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्म कल्याणक सम्बन्धी अर्घ्य

दोहा

श्री जिन जन्म कल्याण की महिमा अपरम्पार।
तीनों लोकों में हुआ प्रभु का जय जयकार॥

वीरछन्द

जन्म समय तीनों लोकों में होता है आनन्द अपार।
सभी जीव अन्तर्मुहूर्त को पाते अति साता सुखकार॥
इन्द्रशची ऐरावत पर चढ़ धूम मचाते आते हैं।
जिन प्रभु का अभिषेक मेरु पर्वत के शिखर रचाते हैं॥
क्षीरोदधि से एक सहस्र अरु अष्ट कलश सुर भरते हैं।
स्वर्ण कलश शुभ इन्द्र भाव से प्रभु मस्तक पर करते हैं॥
मात पिता को सौंप इन्द्र करता है नाटक नृत्य महान।
परम जन्म-कल्याण महोत्सव पर होता है जय जयगान॥ २॥

ॐ ह्रीं श्री जन्मकल्याणकविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप कल्याणक सम्बन्धी अर्घ्य

दोहा

श्री जिन तप कल्याण की महिमा अपरम्पार।
तप संयम की हो रही पावन जय जयकार॥

वीरछन्द

काललब्धि पा जब प्रभु के मन में आता वैराग्य अपार।
भव्य भावना द्वादश भाते तजते राजपाट संसार॥

लौकान्तिक ब्रह्मर्षि एक भव अवतारी होते पुलकित।
प्रभु वैराग्य सुदृढ़ करने को कहते धन्य-धन्य हर्षित॥

इन्द्रादिक प्रभु को शिविका पर ले जाते बाहर वन में।
महाव्रती हो केश लोंचकर लय होते निज चिंतन में॥

इन केशों को इन्द्र प्रवाहित क्षीरोदधि में करता है।
तप-कल्याण महोत्सव तप की विमल भावना भरता है॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्री तपकल्याणकविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान कल्याणक सम्बन्धी अर्घ्य

दोहा

परम ज्ञान कल्याण की महिमा अपरम्पार।
स्व-पर प्रकाशक ज्योति में झलक रहा संसार॥

वीरछन्द

क्षपक श्रेणी चढ़ शुक्ल ध्यान से गुणस्थान बारहवाँ पा।
चार घातिया कर्म नाशकर गुणस्थान तेरहवाँ पा॥

केवलज्ञान प्रकट होते ही होती परमौदारिक देह।
अष्टादश दोषों से विरहित छ्यालीस गुण मंडित नेह॥

समवशरण की रचना होती होते अतिशय देवोपम।
शत इन्द्रों के द्वारा वंदित प्रभु की छवि अति सुन्दरतम॥

दिव्य ध्वनि खिरती है सब जीवों का होता है कल्याण।
परम ज्ञान- कल्याण महोत्सव मानों ज्ञायक का सन्मान ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानकल्याणकविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोक्ष कल्याणक सम्बन्धी अर्घ्य

दोहा

परम मोक्ष-कल्याण की महिमा अपरम्पार।
अष्टकर्म को नाश कर नाथ हुए भवपार ॥

वीरछन्द

गुणस्थान चौदहवाँ पाकर योगों का निरोध करते।
अन्तिम शुक्ल ध्यान के द्वारा रज अघातिया भी हरते ॥

अ, इ, उ, ऋ, लृ उच्चारण में लगता है जितना काल।
तीन लोक के शीश विराजित हो जाते हैं प्रभु तत्काल ॥

तन कपूरवत उड़ जाता है नख अरु केश शेष रहते।
मायामयी शरीर देव रच अन्तिम क्रिया अग्नि दहते ॥

मंगल गीत नृत्य वाद्यों की ध्वनि से होता हर्ष अपार।
भव्य मोक्ष-कल्याण मनाते सब जीवों को मंगलकार ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्री मोक्षकल्याणकविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

निज कल्याणक हेतु हैं पञ्च कल्याण महान।
महा-अर्घ्य अर्पित करुँ हो स्वभाव का भान ॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चकल्याणकविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

जिनवर पंच कल्याण की महिमा अगम अपार।
गर्भ जन्म तप ज्ञान सह महामोक्ष शिवकार ॥

वीरछन्द

वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के मंगल कल्याण महान।
गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष पाँचों कल्याणक महिमावान॥

जिनध्वनि सुनकर मेरे मन में रहा नहीं प्रभु भय का लेश।
पूर्ण शुद्ध ज्ञायक स्वरूपमय एकमात्र है उज्ज्वल वेश॥

संयोगी भावों के कारण भटक रहा भवसागर में।
जिन प्रभु का उपदेश सुना पर झिला नहीं निज गागर में॥

अवसर आज अपूर्व मिल गया प्रभु चरणों की पूजन का।
सम्यक्दर्शन आज मिला है फल पाया नर जीवन का॥

हे प्रभु मुझे मार्गदर्शन दो अब मैं आगे बढ़ जाऊँ।
अणुव्रत धार महाव्रत धारूँ गुणस्थान भी चढ़ जाऊँ॥

परम पंचकल्याण विभूषित जिन प्रभु की महिमा गाऊँ।
घाति अघाति कर्म सब क्षयकर शाश्वत सिद्ध स्वपद पाऊँ॥

दोहा

तीर्थंकर जिन देव के पूज्य पंच कल्याण।
भाव सहित जो पूजते पाते शांति महान॥

ॐ ह्रीं श्री गर्भजन्मतपज्ञानमोक्षपंचकल्याणकविभूषिततीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चान्द्रायण

पञ्च कल्याणक भूषित श्री जिनदेव जी।
भविजन का कल्याण होय स्वयमेव जी॥
कल्पद्रुम जिन-समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ विभो॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

* * *

26

श्री सिद्ध पूजन

स्थापना

राधिका

हे सिद्ध आपकी महिमा सबसे न्यारी।
तुम तारण तरण महान परम हितकारी॥
आनन्द लीन तुम तो केवल ज्ञायक हो।
शिवपथगामी को तुम ही शिवनायक हो॥
सर्वार्थ सिद्धकर स्वामी मोक्ष पधारे।
अपने अनन्तगुण तुमने नाथ निहारे॥
तुम कर्म कालिमा से न कहीं भी दूषित।
तुम मोक्ष लक्ष्मी से हो सदा विभूषित॥
अनुपम पंचम गति तुमने पाई स्वामी।
मैं पूजन करने आया अन्तर्यामी॥
मैं भी पंचमगति पाऊँ ऐसा बल दो।
अपने समान ध्रुव शाश्वत सुख उज्ज्वल दो॥
आत्मज्ञ नाथ सर्वज्ञ वीतरागी हो।
त्रिभुवन की सकल विभूति पूर्ण त्यागी हो॥
मैं 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' जपूँ निरन्तर।
सिद्धों सम निर्मल हो मेरा अभ्यन्तर॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्)

मत्तसवैया

एकत्व विभक्त स्वरूप नीर निर्मल अनन्त गुण सम्बन्धित।
परमार्थ शुद्ध चैतन्य निरत एकोऽहं श्रद्धा ज्ञान चरित्र॥
तुम अनन्तज्ञ ज्ञानानन्दी भूतार्थ स्वरूप स्वदायक हो।
तुम परम पारणामिक स्वभाव परद्रव्य रहित शिव नायक हो॥

ॐ ह्रींश्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चैतन्य सुगन्धमयी चन्दन तुम पंच परावर्तन विरहित।
हो अध्यवसानादि विहीन आनन्द समुद्र अथाह अमित॥
निर्मोह कर्म से निर्ममत्व सत्यार्थ तीर्थ तुम परम हंस।
हो स्वयं सिद्ध सर्वज्ञ प्रभो! चिन्मय ध्रुव ज्ञान स्वभानु वंश॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

नित्योऽहं परमानन्द रूप चित् कला रूप स्वाधीन तंत्र।
परमेश्वर हो अक्षय अक्षत तुम ही विज्ञान अखण्ड मंत्र॥
तुम द्रव्यभाव नोकर्म रहित अस्पृष्ट नियत निर्मल अबंध।
चैतन्यप्राण उद्योत नित्य वर्णादि विहीन अरस अगंध॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

लक्षण उपयोग त्रिकाली ध्रुव अविकारी ज्ञान शरीरी हो।
टकोत्कीर्ण भगवान सिद्ध तुम आत्मज्ञ अशरीरी हो॥
तुम धीरोदात्त पुष्प पावन तुम ही अनन्त सुख सागर हो।
निज समयसारमय राजहंस कैवल्य स्वरूप उजागर हो॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

तुम अव्याबाध अगुरुलघुत्वगुण के स्वामी संयोग रहित।
स्थिति अनुभाग बंध विरहित हो प्रकृति प्रदेश कुबंध रहित॥

समता स्वरूप अव्यक्त रूप प्रभु पक्षपात बिन नयातीत।
आनन्द अतीन्द्रिय रसमय चरु तुम गुणस्थान मार्गणातीत॥
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

तुम कारण समयसार दीपक उत्कृष्ट स्वरूप अपूर्व शुद्ध।
तुम तो चैतन्य धातु निर्मित अति निर्मल परमानन्द बुद्ध॥
तुम नित्य निरंजन प्रभु अभेद ज्ञानानन्दात्मक ध्रुव स्वभाव।
तुम तो हो पूर्ण स्वरूप सदा परभावों का तुम में अभाव॥
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

समता भावी निरपेक्ष वृत्ति संस्कारित करती है जीवन।
जो अन्तर्दृष्टि शून्य होते वे बाह्यदृष्टि से कोरे मन॥
अन्तर मन में विरागता की ही धूप शुद्ध शोभित होती।
संयम प्रमाद को जय करता आत्मा अपने में स्थित होती॥
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो अप्रमत्त होता वह श्रेणी चढ़ने का उपाय करता।
फिर शुक्ल ध्यान फल कच्चा ही भावुकता में निज उर धरता॥
उपशम श्रेणी चढ़ने से होता है असफल सारा प्रयत्न।
क्षायिक श्रेणी पर बढ़ जाता फिर सफल बनाता सकल यत्न॥
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तरमुहूर्त में यही जीव अरहन्त अवस्था पाता है।
फिर सिद्धशिला शिव आसन पा शास्वत ध्रुव सौख्य सजाता है॥
पदवी अनर्घ्य चेतनकुमार को मिलती है धीरे धीरे।
अपने स्वरूप में मग्न सदा रहता है निजानन्द तीरे॥
सम्यक्दर्शन आधार शिला है मोक्ष महल की उर में धर।
चेतनकुमार तू जागृत हो चारित्र सजा अपने भीतर॥
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अर्घ्यावली

ताटंक

पूर्ण ज्ञान जलधारा पाकर जीव स्वभाव निकट आया।
ज्ञानावरणी के अभाव से ज्ञान अनन्त प्रकट पाया॥

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानवरणीयकर्मरहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज दर्शन चन्दन सुगन्ध से शुद्ध आत्मा दर्शाया।
दर्शन-आवरणी क्षय करके निज अनन्त दर्शन पाया॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनावरणीयकर्मरहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षायिक सम्यग्दर्शन रूपी अक्षत अन्तर में पाया।
मोहनीय के क्षय से प्रभुवर निज अनन्त सुख उर भाया॥

ॐ ह्रीं श्री मोहनीयकर्मरहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तराय सर्वथा क्षीण कर बल अनन्त वैभव पाया।
नव केवल निधियों का उपवन शाश्वत उर में लहराया॥

ॐ ह्रीं श्री अन्तरायकर्मरहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वेदनीय के क्षय होते ही गुण अव्याबाधी पाया।
सादि अनन्तानन्त काल के लिये ध्रौव्य सुख उर आया॥

ॐ ह्रीं श्री वेदनीयकर्मरहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आयुकर्म क्षय करते ही प्रभु सूक्ष्म सुगुण उर दर्शाया।
सिद्ध रूप सिद्धत्वमयी प्रगटित कर शुद्ध स्वपद पाया॥

ॐ ह्रीं श्री आयुकर्मरहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नाम कर्म के क्षय होते ही अगुरुलघुगुण प्रकटाया।
परमौदारिक जड़ तन तजकर अशरीरी ध्रुव नभ पाया॥

ॐ ह्रीं श्री नामकर्मरहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गोत्रकर्म को क्षय करते ही अवगाहन गुण प्रकटाया।
ऊंच नीच का भेद सर्वथा पूरा पूरा विघटाया॥

ॐ ह्रीं श्री गोत्रकर्मरहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

अष्ट कर्म के क्षय होते ही अष्ट सुगुण सागर पाया।
निश्चय से तो गुण अनन्त का सागर उर में लहराया॥

कर्मों की रज वाष्प भूत हो त्वरित उड़ गयी भली प्रकार।
महाकाव्य रचना कर डाली सर्व अभीप्सा करके क्षार॥

एक समय में ऊर्ध्व लोक जा चेतनराज हुआ निर्भार।
नैसर्गिक आनन्द अतीन्द्रिय शिव सुख की पायी रसधार॥

मैं भी अष्ट सुगुण प्रकटाऊँ नाथ मुझे ऐसा बल दो।
निज सिद्धत्व शक्ति केवल का ही अखण्ड प्रभु संबल दो॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टकर्मरहितसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

राधिका

ध्रुव अचल सर्व सिद्धों को सविनय वन्दन।
घन घाति अघाति विनाशक नित्य निरंजन॥
प्रभु द्रव्य-भाव-वचनों से तुम गुण गाऊँ।
शुद्धातम के प्रतिछन्द आपको ध्याऊँ॥

निज अवलंबन से ध्रुव गति तुमने पाई।
पर-परिणति कर विश्रांत अचलता पाई॥
जग की उपमाएँ तुम सन्मुख शरमाई।
निर्बाध अचल अविकल अनुपम सुखदाई॥

है परम पारिणामिक स्वभाव निज पंचम।
ज्ञायक स्वभाव की पावना गरिमा अनुपम॥
आनन्द अतीन्द्रिय की ध्रुव धारा पाई।
अनुभव की महिमा ऋषि मुनियों ने गाई॥

सारे विभावमय भाव आपने जीते।
हो गए आस्रव बन्ध भाव से रीते॥
संवर पूर्वक निर्जरा सु तरणी पाई।
बन्धों की प्रबल श्रंखला दूर हटाई॥
है धर्म अर्थ अरु काम शून्य गति शिवमय।
अपवर्ग मोक्ष निर्वाण स्वगति मंगलमय॥
ज्ञायक स्वभाव ध्रुव मेरा प्रभु जागा है।
मिथ्यात्व मोह भ्रम भाव पूर्ण भागा है॥
चैतन्यराज का चमत्कार पाऊँगा।
लोकाग्र शीष पर मैं भी प्रभु आऊँगा॥
है यही प्रार्थना मेरी अन्तर्यामी।
मैं भी बन जाऊँ तुम समान ध्रुवधामी॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टगुणयुक्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

चान्द्रायण

ध्रुव अनुपमगति पाये सिद्धों को नमन।
असिद्धत्व का कर दूँ मैं पूरा हनन॥
कल्पद्रुम जिन-समवशरण पाऊँ प्रभो।
जिनपूजन कर जिन सम निज ध्याऊँ प्रभो॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

***

समुच्चय महाऽर्घ्य

माधवमालती

आज निर्मल साधना की विमल बेला आ गयी है।
आत्मा निज ज्ञान सुरभित पुष्प बेला पा गयी है॥
समवशरण महान पाया आज प्रभु सौभाग्य से ही।
दान पाया किमिच्छिक अब आज मैंने भाग्य से ही॥
कल्पद्रुम सम समवश्रत सौन्दर्यमय त्रिभुवनजयी है।
विराजित हैं तीर्थंकर ज्ञान रवि मंगलमयी है॥
परम महिमामयी जिन छवि आज उर को भा गयी है।
आज निर्मल साधना की विमल बेला आ गयी है॥
बिताए कल्पान्तकाल अनादि से मैंने दुःखों में।
आ नहीं पाया अभी तक एक पल को भी सुखों में॥
मूल में ही भूल है तो सुख कहाँ से प्राप्त होगा।
शुद्ध आत्म स्वभाव में अनुभव कहाँ से व्याप्त होगा॥
आज अपनी भूल का यह अन्त सहसा पा गयी है।
आज निर्मल साधना की विमल बेला आ गयी है॥
विमल हैं परिणाम इसके उर सहज हर्षित हुआ है।
आत्मा का रूप लखकर आत्मा पुलकित हुआ है॥
भेदज्ञान अपूर्व की निधि मिल गयी मुझको सहज है।
शुद्ध सरसिज खिल गया है भावना शिवमय सहज है॥
अतीन्द्रिय आनन्द की बदली हृदय में छा गयी है।
आज निर्मल साधना की विमल बेला आ गयी है॥

मूढ़ता को दग्ध करके ध्यान अब अपना धरुँगा।
ज्ञान नभ मण्डल मिला है जगत दुःख सपना हरुँगा॥
उर्मियाँ कैवल्य रवि की उग रही हैं निज हृदय में।
जानता हूँ सुख भरा है पूर्णतः ध्रुव निज निलय में॥
यथाख्याति भावना भी गीत गुन-गुन गा रही है।
आज निर्मल साधना की विमल बेला आ गयी है॥
संयमित संयम मिला अनुशासनों से स्वतः निर्मित।
भावना निज फलवती है ज्ञान है उर में अपरिमित॥
साम्यभावी सरस जीवन की कला पायी अभी है।
हानि-लाभ विषाद-हर्ष विकल्प लीन हुए सभी हैं॥
मुक्ति की मंजिल मिली है वासना शर्मा गई है।
आज निर्मल साधना की विमल बेला आ गयी है॥
•विकारों के जगत में अविकारता का काम क्या है?
पूछने वाला न कोई बता तेरा नाम क्या है?
तज दिया कर्तृत्व पर का मग्न है कर्तृत्व निज में।
तज दिया भोक्तृत्व पर का मग्न है भोक्तृत्व निज में॥
मुक्तिरमणी देख मुझको त्वरित हर्षित आ गयी है।
आज निर्मल साधना की विमल बेला आ गयी है॥
लिये है वरमाल कर में वरेगी चैतन्य वर को।
छोड़कर अब राग के स्वर भजेगी चैतन्य स्वर को॥
सत्य स्वर में वाद्य बजते प्रभाती के गीत गाते।
जो स्वयं में रमें वे ही आत्मा की प्रीत पाते॥
समयसारी भावना सौन्दर्य अक्षत पा गयी है।
आज निर्मल साधना की विमल बेला आ गयी है॥

यही तो होगी विराजित समवशरण स्वमध्य में अब।
यही तो तीर्थेश होगी ज्ञानगृह कर्तव्य में अब॥
इन्द्र आकर क्षीर सागर से चरण फिर धोयेंगे ही।
शरण पाकर मुक्ति के वे बीज निज हित बोयेंगे ही॥
भव्य दीपावलि सजेगी भावना निज भा गयी है।
आज निर्मल साधना की विमल बेला आ गयी है॥
सकल जग के द्रव्य अपने चतुष्टय से पूर्ण ही हैं।
सिद्ध अरु अरहंत भी निज चतुष्टय आपूर्ण ही हैं॥
अतः मैं भी पूर्ण ही हूँ नहीं रंच अपूर्ण हूँ मैं।
पूर्ण हूँ परिपूर्ण हूँ सम्पूर्ण हूँ आपूर्ण हूँ मैं॥
मुक्ति रमणी अर्घ्य अर्पण हेतु ऑगन में खड़ी है।
आज निर्मल साधना की विमल बेला आ गयी है॥

दोहा

अति विशुद्ध परिणाममय महाअर्घ्य यह आज।
परिणति अर्पित कर रही धन्य-धन्य जिनराज॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

दोहा

गणधर भी नहीं पा सके प्रभु महिमा का पार।
यथाशक्ति गुणगान कर हर्षित हुआ अपार॥

वीरछन्द

जो शुद्धात्म भावना भाते वे ही पाते हैं निर्वाण।
वे सिद्धत्व प्राप्त करते हैं करते शीघ्र आत्म कल्याण॥

राज्य लक्ष्मी बहुत सुलभ है आत्म बोधि है अति दुर्लभ।
अपरिगृही अनिच्छुक मुनि को ही है केवलज्ञान सुलभ॥
भावरहित श्रुतज्ञान व्यर्थ है जिनभावना बिना अज्ञान।
जिनभावना बिना होता है नहीं किसी का भी कल्याण॥
विषय विरक्त जीव षोडषकारण भावना अगर भाते।
तीर्थंकर यशप्रकृति बांधते तीर्थंकर पद को पाते॥
परमशुद्ध निर्मल जिनलिंग महाउज्ज्वल रत्नत्रयरूप।
यही श्रमण का महामूलधन यही सर्वदा मोक्ष स्वरूप॥
मद मतंग गज के समान तू मत विवेक तजना चेतन।
शुद्धभाव पाये बिन पलभर पुण्य नहीं तजना चेतन॥
रत्नों में ज्यों वज्र श्रेष्ठ है वृक्षों में ज्यों चन्दन श्रेष्ठ।
देवों में ज्यों इन्द्र ज्येष्ठ त्यों श्रमणों में तीर्थंकर ज्येष्ठ॥
तीर्थंकर का समवशरण ही कल्पद्रुम है महामहान।
भक्तिभाव से पूजा हमने यह कल्पद्रुम महाविधान॥
हे प्रभु ! यह आशीर्वाद दो हम भी पायें सम्यग्ज्ञान।
भेदज्ञान की हमें प्राप्ति हो जिससे हो निर्वाण महान॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणमध्यविराजमानतीर्थंकरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेपूर्णार्घ्यं नि.

कुण्डलिया

कल्पद्रुम पूजन हुई हुआ विधान महान।
समवशरण महिमा मिली गाऊँ मंगल गान॥
गाऊँ मंगलगान प्राप्तकर सम्यग्दर्शन।
सम्यग्दर्शन पाकर काटूँ भव के बन्धन॥
भवदुःख का अभाव करने में मैं हूँ सक्षम।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर ही कल्पद्रुम॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

* * *

शान्ति पाठ

गीतिका

शान्तिसागर प्राप्ति का पुरुषार्थ मैंने प्रभु किया।
कल्पवृक्ष समान श्रेष्ठ विधान कल्पद्रुम किया॥
अब नहीं चिन्ता मुझे है कभी होऊँगा अशान्त।
आज मैंने स्वतः पाया ज्ञान का सागर प्रशान्त॥
विश्व के प्राणी सभी चिरशान्ति पायें हे प्रभो।
मूलभूत निजात्मा का ज्ञान ही पायें विभो॥
मूल भूल विनष्ट करके नाथ मैं ज्ञानी बनूँ।
बनूँ सम्यग्दृष्टि उत्तम पूर्णतः ध्यानी बनूँ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

नौ बार णमोकार मंत्र द्वारा पञ्च परमेष्ठी का स्मरण करें।

क्षमापना

दोहा

क्षमा करें प्रभु भूल सब मैं अज्ञानी नाथ!
शरण आपकी प्राप्तकर अब मैं हुआ सनाथ॥
कृपा दृष्टि प्रभु आपकी पूरी राग विहीन।
दिव्यदृष्टि का दान दो कर दो ज्ञान प्रवीण॥
ॐ शान्ति हो हृदय में पाऊँ शान्ति महान।
अनुभवरस का पान कर करूँ आत्मकल्याण॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

जाप्य – ॐ ह्रीं श्री कल्पद्रुमजिनेन्द्राय नमः।

* *

कल्पद्रुम स्तवन

कल्पद्रुम यह समवशरण है भव्यजीव का शरणागार।
जिनमुखघन से सदा बरसती चिदानन्दमय अमृतधार॥

निज ज्ञायक स्वभाव में जमकर प्रभु ने जब ध्याया शुक्लध्यान।
मोहभाव क्षयकर प्रगटाया यथाख्यात चारित्र महान॥
तब अन्तर्मुहूर्त में प्रगटा केवलज्ञान महा सुखकार।
दर्पण में प्रतिबिम्ब तुल्य जो लोकालोक प्रकाशनहार॥ १॥

गुण अनन्तमय कला प्रकाशित चेतन-चन्द्र अपूर्व महान।
राग आग की दाह रहित शीतल झरना झरता अभिराम॥
निज वैभव में तन्मय होकर भोगें प्रभु आनन्द अपार।
ज्ञेय झलकते सभी ज्ञान में किन्तु न ज्ञेयों का आधार॥ २॥

जहाँ धर्म वर्षा होती वह समवशरण अनुपम छविमान।
कल्पवृक्ष सम भव्यजनों को देता गुण अनन्त की खान॥
सुरपति की आशा से धनपति रचना करता है सुखकार।
निज की कृति ही भाषित होती अति आश्चर्यमयी मनहार॥ ३॥

दर्शन ज्ञान वीर्य सुख से है सदा सुशोभित चेतनराज।
चौंतिस अतिशय आठ प्रातिहार्यों से शोभित है जिनराज॥
अन्तर्बाह्य प्रभुत्व निरखकर भव्य लहें आनन्द अपार।
प्रभु के चरण कमल मैं वन्दन कर पाई सुख शान्ति अपार॥ ४॥

***